महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

बीएड- (प्रथम सत्र)

शिक्षा ००२:- शिक्षार्थी एवं उसका सन्दर्भ

(Learner and the Context)

शिक्षा 002

दूर शिक्षा निदेशालय

शिक्षा ००२:- शिक्षार्थी एवं उसका सन्दर्भ

(Learner and the Context)

पाठ्यक्रम

उद्देश्यः इसका उद्देश्य मानव विकास की प्रक्रिया और प्रश्नों से परिचय कराना है। इसके द्वारा विद्यार्थी संज्ञानात्मक सामाजिक व नैतिक विकास की सैद्धान्तिक समझ विकसित करेंगे। इसके आलोक में भारतीय संदर्भो में बाल्यावस्था और किशोरावस्था की बहुलता को समझ सकेगें।

इकाई 1 : मानव विकास

अवधारणाएँ (जैसे-विकास,वृद्धि और परिपक्वता) और इनसे जुड़ी बहसें। विकास एक प्रक्रिया के रूप में : बहुआयामी, सतत व असतत जीवन पर्यन्त; विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ

इकाई 2 : संज्ञानात्मक विकास

पियाजे का सिद्धान्तः संज्ञानात्मक संरचनाएँ और प्रक्रियाएँ, विकास की अवस्थाएँ; वॉयगात्सकी का सिद्धान्तः संज्ञान के सामाजिक स्त्रोत, सांस्कृतिक उपकरण और विकास, भाषा की भूमिका, सीखना और विकास

इकाई 3 : सामाजिक और नैतिक विकास

स्व और पहचान का विकास, स्वधारणा और आत्म सम्मान विकास; स्व और अन्य (परिवार, हमउम्र साथी और दोस्त); स्व और भावना; इरिक्सन और कोहलबर्ग का सिद्धांत और इनके निहितार्थ।

इकाई 4 : भारतीय समाज में बड़ा होना

भारतीय समाज में बड़ा होनाः बाल्यावस्था और किशोरावस्था के दौरान विकास की प्रक्रिया; भारतीय संदर्भ में बाल्यावस्था और किशोरावस्था से जुड़े विमर्श।

शिक्षा ००२:- शिक्षार्थी एवं उसका सन्दर्भ

(Learner and the Context)

इकाई योजना

इकाई : १

मानव विकास :अवधारणाएँ

इकाई :२

संज्ञानात्मक विकास

इकाई :३

सामाजिक और नैतिक विकास

इकाई :४

भारतीय समाज में बड़ा होना

इकाई :१ मानव विकास : अवधारणाएँ

इकाई की संरचना

१.0 शिक्षण उद्देश्य

१.१ परिचय

१.२ विषय विवेचन

१.२.१ विकास वृद्धि और परिपक्वता

१.२.२ विकास के सिद्धांत

१.२.३ विकास प्रक्रिया की विशेषताएँ

१.२.४ विकास की अवस्थाए तथा पक्ष

१.२.५ विकास को प्रभावित करने वाले कारक

१.२.६ वृद्धि और विकास : कुछ विचारणीय मुद्दे

१.३ सारांश

१.४ अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

१.५ शब्दावली

१.६ कार्य आवंटन

१.७ क्रियाएँ

१.८ प्रकरण अध्ययन (केस स्टडी)

१.९ सन्दर्भ पुस्तकें

१.० शिक्षण उद्देश्य

उद्देश्य :- इस इकाई का प्रयोजन मानव विकास की प्रक्रिया,उससे जुड़े सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य और समकालीन विमर्शों से परिचित कराना है। इसके द्वारा विद्यार्थी मानव विकास की अवधारणाओं एवं विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।

१.१ इकाई परिचय

मानव विकास जीवनपर्यंत चलने वाली एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक एवं नैतिक विकास सम्मिलित हैं | इन पहलुओं को समझने के लिए अनेक सिद्धांत और अवधारणाएँ विकसित हुई हैं | इनसे मानव विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की जानकारी मिलती है|

१.२ विषय विवेचन

१.२.१ विकास,वृद्धि और परिपक्वता

१. मानव विकास अनेक कारकों द्वारा प्रभावित होता है|

२. इन कारकों को मूलतः दो वर्गों में विभाजित किया गया है -आनुवंशिक एवं पर्यावरणीय |

३.आनुवांशिक कारकों से तात्पर्य ऐसे गुणों से है जो माता-पिता से संतान में आते है ,अर्थात जो जन्म के पहले गर्भधारण के समय से ही व्यक्ति में मौजूद होते हैं |

४. परिवेशीय कारकों से तात्पर्य ऐसे कारकों से है जो व्यक्ति के जीवनकाल में मौजूद होते है और उसके विकास की दिशा एवं दशा को प्रभावित करते हैं | इसके अंतर्गत सामाजिक,शैक्षिक और पारिवारिक कारक आते हैं |

५.विकास एक सतत और क्रमिक प्रक्रिया है अर्थात् उसमें व्यक्ति का विकास जन्म से मृत्यु तक चलता रहता है और इस दौरान उसमें क्रमानुसार परिवर्तन होते रहते हैं|

६.शिक्षण के क्षेत्र में सफलता पाने के लिए हर अध्यापक छात्र के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है| इसलिए हर अध्यापक अगर वृद्धि और विकास के अर्थ,अवस्थाएँ,एवं सिद्धांतों के बारे में समझ ले तो वह विद्यार्थियों का समग्र विकास कर सकता है|

प्रायः वृद्धि तथा विकास को समानार्थक रुप में प्रयोग किया जाता है| निःसन्देह ये दोनों ही शब्द आगे बढ़ने की ओर संकेत करते हैं परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इन दोनों संप्रत्ययों में अंतर है|

वृद्धि तथा विकास का अर्थ -

सामान्य रूप से (growth) वृद्धि शब्द का प्रयोग कोशिकीय वृद्धि की प्रक्रिया के लिए किया जाता है| जबकि विकास शब्द का अर्थ शरीर के समस्त अंगों में आये परिवर्तनों की संगठित कार्यक्षमता की बढ़ोतरी की प्रक्रिया से है |विकास एक गुणात्मक प्रक्रिया है जब की वृद्धि मात्रात्मक प्रक्रिया है|

वृद्धि मुख्यतः जैविक घटनाओं पर आधारित होती है जो व्यक्ति की शारीरिक वृद्धि को शैशवावस्था से किशोरावस्था तक या कभी-कभी प्रारंभिक प्रौढ़ावस्था तक स्वाभाविक रूप से चलती रहती है| यह एक ऐसा परिवर्तन है जिसके ऊपर पर्यावरणीय प्रभाव सीमित होता है |

विकास का अर्थ

विकास संपूर्ण अभिवृद्धियों का संगठन है। शरीर के विभिन्न शारीरिक, मानसिक तथा व्यावहारिक संगठनों को विकास कहते हैं। विकास होने पर हम सामान्य से जटिल की और आगे बढ़ते हैं|

हरलॉक के अनुसार-

"विकास, वृद्धि तक ही सीमित नहीं है। इसकी अपेक्षा, इसमें परिपक्वावस्था के लक्ष्य की ओर, परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम भी निहित रहता है। विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नई-नई विशेषताएँ और नई- नई योग्यताएँ प्रकट होती हैं"।

सोरेन्स के अनुसार

"मनुष्य जाति के शिशुओं के विकास का प्रतिमान एक-सा है, लेकिन उनके विकास की गति में भिन्नता होती है। यह विकास की गति सामान्य से विशिष्ट की ओर ले जाती है। विकास सदा एकीकृत होता है। विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है"। विकास शरीर के विभिन्न अंगों की कार्यक्षमता को इंगित करता है| विकास शरीर की अनेक संरचनाओं तथा कार्यों को संगठित करने तथा कार्यपरक बनाने की जटिल प्रक्रिया है| यह वह प्रक्रिया है जिसमे आंतरिक शरीर रचना सम्बन्धी परिवर्तन तथा इनसे उत्पन्न मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ एकीकृत होकर व्यक्ति को सरलता,सहजता व मितव्ययता के साथ कार्यक्षम बनाती है|

परिपक्वता का अर्थ-

विकास क्रम में जब भी नई क्रिया सीखनी हो तो पहली क्रिया अपने में पूर्ण हो जाना बहुत आवश्यक है, उसे परिपक्वता कहते है। विकास में परिपक्वता का बहुत बड़ा योगदान है|

अभिवृद्धि एवं विकास में अन्तर

वृद्धि	विकास
1) वृद्धि से आशय मात्रात्मक रुप से होने वाले शारीरिक एवं व्यावहारिक परिवर्तनों से है। 2) वृद्धि निश्चित आयु तक पहुँच कर रुक जाती है। 3) वृद्धि का अर्थ संकुचित है। यह विकास के अवयवों में से एक है। 4) वृद्धि को मापा तौला जा सकता है। जैसे- शरीर की लम्बाई व भार की वृद्धि को मापा जा सकता है। 5) वृद्धि की प्रक्रिया साधारण होती है। 6)वृद्धि एकाकी प्रक्रिया है|	1) विकास से आशय गुणात्मक परिवर्तनों से है जो विभिन्न शारीरिक,मानसिक तथा व्यावहारिक संगठनों में दिखाई पड़ते हैं। 2) विकास जीवन पर्यन्त चलता रहता है। 3) विकास का अर्थ व्यापक है। शारीरिक विकास के साथ बौद्धिक,सामाजिक तथा संवेगात्मक विकास भी होता है। 4) विकास के परिवर्तनों को गुणात्मक अंतरों के रूप में होते हुए देखा जा सकता है। 5) विकास की प्रक्रिया जटिल होती है। 6) विकास एक बहुमुखी प्रक्रिया है|

निष्कर्ष

वृद्धि शारीरिक अभिवृद्धि को बताती है जबकि विकास प्रगतिशील गुणात्मक परिवर्तनों को इंगित करता है | विकास के प्रमुख पक्ष क्रमशः शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक तथा नैतिक विकास हैं| वंशानुक्रम, भोजन, बुद्धि, परिवेश, स्वास्थ्य तथा पारिवारिक परिस्थितियाँ आदि कारक विकास प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं | विभिन्न अवस्थाओं की विकासात्मक विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही बालकों की शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए|

अपनी प्रगति की जाँच १

वृद्धि और विकास में अंतर स्पष्ट कीजिए|

.....
.....

१.२.२ विकास के नियम

विकास के संदर्भ में अनेक नियम पहचाने गये हैं। विभिन्न अध्ययनों से यह प्रगट होता है कि विकासात्मक परिवर्तन कुछ निश्चित सिद्धांतों के अनुसार घटित होते हैं। कुछ सिद्धांत निम्नलिखित हैं-

1) निरन्तर विकास का नियम (Principle of Continuous Development)

इस सिद्धांत के अनुसार विकास की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। यह गति तीव्र और मंद हो सकती है। जैसे प्रथम तीन वर्षो में बच्चे की विकास की गति अपेक्षाकृत तीव्र होती है और कुछ समय बाद यह गति कम होती जाती है। इसी तरह शरीर के कुछ भागों का विकास तीव्र गति से होता है तो कुछ भागों का मंद गति से होता है।

2) विकास की विभिन्न गति का नियम (Principle of different speed of Development)

विभिन्न व्यक्तियों के विकास की गति में भिन्नता होती है, और यह भिन्नता विकास की संपूर्ण अवधि में बनी रहती है। उदाहरण के लिए जो व्यक्ति जन्म के समय लंबा होता है, वह साधारणतः बड़ा होने पर भी लंबा रहता है और जो छोटा होता है वह साधारणतः छोटा रहता है।

3) विकास क्रम का सिध्दांत नियम (Principle of Developmental Sequence)

इस सिद्धांत के अनुसार बच्चे के पेशीय (motor) तथा भाषा-संबंधी विकास आदि निश्चित क्रम से होते हैं| उदाहरण के लिए जन्म के समय शिशु केवल रोना जानता है। 3 माह में वह गले से एक विषेश प्रकार की आवाज निकालने लगता है। 6 माह में वह आनन्द की ध्वनि करने लगता है।

4) विकास दिशा का नियम (Principle of Development Direction)

इस सिद्धांत के अनुसार बच्चे का विकास निश्चित दिशा में होता है। वह विकास सिर से पैर की दिशा में होता है। उदाहरण के लिए शिशु अपने जन्म के प्रथम सप्ताह में केवल अपने सिर को उठा पाता था, वह एक वर्ष बाद खड़ा होने और 18 माह के बाद चलने लगता है।

5) एकीकरण का नियम (Principle of Integration)

इस सिद्धांत के अनुसार बच्चा पहले संपूर्ण अंग को और उसके बाद अंगों के भागों को चलाना सीखता है।

उदाहरण के लिए शिशु पहले पूरे हाथ को, फिर अंगुलियों को और फिर हाथ एवं अंगुलियों को एक साथ संचालित करना सीखता है।

6) परस्पर संबंध का नियम (Principle of Interrelation)

इस सिद्धांत के अनुसार बच्चे के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक आदि पहलुओं के विकास में परस्पर संबंध होता है।

7) समान संरुप का नियम (Principle of Uniform Pattern)

प्रत्येक जाति, चाहे वह पशुजाति हो या मानवजाति, अपनी प्रजाति के अनुरूप विकास के संरूप का अनुसरण करती है। उदाहरण के लिए संसार के प्रत्येक भाग में मानव-जाति के शिशुओं के विकास का प्रतिमान एक ही है और उसमें किसी प्रकार का अंतर होना संभव नही है।

8) सामान्य व विशिष्ट प्रतिक्रियाओं का नियम (Principle of General and Specific Responses)

इस नियम के अनुसार बच्चे का विकास सामान्य प्रतिक्रियाओं से विशिष्ट प्रतिक्रियाओं की ओर होता है| उदाहरण के लिए नवजात शिशु अपने शरीर के किसी एक अंग का संचालन करने से पूर्व अपने शरीर का संचालन करता है और किसी विशेष वस्तु की ओर इशारा करने से पूर्व अपने हाथों को सामान्य रूप से चलाता है।

9) वंशानुक्रम व वातावरण की अन्तःक्रिया का नियम (Principle of Inter-relationship of Heridetory and Envirnoment)

इस नियम के अनुसार बच्चे का विकास वंशानुक्रम एवं वातावरण की अन्तःक्रिया के कारण होता है|

अपनी प्रगति की जाँच २

विकास के विभिन्न सिद्धांतो की सोदाहरण विवेचना कीजिए|

.....

.....

.....

१.२.३ विकास प्रक्रिया की विशेषताएँ

1) विकास एक निरंतर प्रक्रिया है।
2) विकास क्रमबद्ध तरीके से होता है।
3) विकास पूर्ण रूप में दिखता है।
4) विकास स्थूल स्थिति से सूक्ष्म स्थिति की ओर होता है।
5) विकास के विविध अंगों की गति कम ज्यादा होती है।
6) मनुष्य के विकास की गति शुरू में अधिक होती है।
7) विभिन्न परिस्थिति और वातावरण का व्यक्ति के विकास पर प्रभाव पड़ता है।
8) विकास की कालावधि के बारे में सभी जानकारों का एक समान मत नही है।

1) विकास एक निरंतर प्रक्रिया है।

प्रत्येक व्यक्ति का विकास,उसके प्राप्त अनुभवों के द्वारा निरंतर घटित होता रहता है| व्यक्ति के जीवन में कई तरह की समस्याएँ आती हैं जिनको सुलझाने में व्यक्ति को विचार और तर्क के साथ निर्णय लेना पड़ता है जिससे बहुआयामी विकास घटित होता है।

2) विकास क्रमबद्ध तरीके से होता है।

विकास क्रमशः होता है। उदाहरण के लिए बच्चा शुरू में एक-एक अक्षर का उच्चारण करता है, उसके बाद शब्द और वाक्य सीखता है और इस तरह वह बोलना सीखता है।

3) विकास पूर्ण रूप में दिखता है।

बच्चा बोलना आरम्भ करने से पहले बहुत से कार्यों को करने में सक्षम होते हैं | जैसे- रोना, बडबडाना, हाव-भाव, संवेदनात्मक अभिव्यक्ति आदि इन्हें वह कर चुका होता है |

4) विकास स्थूल स्थिति से सूक्ष्म की दिशा में आगे बढ़ता है।

बच्चे का विकास स्थूल से सूक्ष्म स्थिति की ओर अग्रसर होता है। उदाहरण के लिए बच्चा पहले चलना सीखता है | यह स्थूल विकास है और उसके बाद वह चलने का कौशल प्राप्त करता है, यह सूक्ष्म विकास है।

5) विकास के विविध अंगों की गति कम ज्यादा होती है।

बच्चे के विकास के विविध अंगों यानि शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक तथा नैतिक विकास की गति विभिन्न अवस्थाओं में कम ज्यादा होती है। उदाहरण के लिए एक बच्चे के शारीरिक विकास की गति उसके मानसिक विकास से कम या ज्यादा हो सकती है|

6) शुरु में विकास की गति तीव्र होती है।

बच्चे के विकास की गति जीवन के आरंभिक अवधि में ज्यादा होती है। जैसे -जैसे उसकी उम्र बढती जाती है, वैसे-वैसे विकास की गति धीमी होती जाती है।

8) परिस्थितियों और वातावरण का व्यक्ति के विकास पर प्रभाव पड़ता है|

विभिन्न परिस्थितियों और वातावरण में बढ़ने वाले बच्चे के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक और सामाजिक विकास में भिन्नता पायी जाती है।

अपनी प्रगति की जाँच ३

विकास प्रक्रिया की प्रमुख विशेषताएँ बताएँ|

.....
.....
.....

१.२.४ विकास की अवस्थाएँ तथा उसके विभिन्न पक्ष

जीवन पर्यंत चलने वाले विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया को कुछ अवस्थाओं में बांट कर समझा जा सकता है| विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाने पर विकास प्रक्रिया में कुछ निश्चित परिवर्तन आ जाते हैं| वास्तव में विकास एक सतत प्रक्रिया है जो जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत सतत चलती रहती है| विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने विकास की विभिन्न अवस्थाओं को बताया है|

सामान्य रूप से इनका वर्गीकरण चार भागों में किया जाता है-

1) गर्भावस्था (Prenatal) गर्भाधान से जन्म तक
2) शैशवावस्था (Infancy) जन्म से 5 या 6 वर्ष तक।
3) बाल्यावस्था (Childhood) 5 या 6 वर्ष से 12 वर्ष तक।
4) किशोरावस्था(Adolescence) 12 वर्ष से 18 वर्ष तक
5) प्रौढावस्था(Adoulthood) 18 वर्ष के बाद
6) आरंभिक प्रौढ़ावस्था - 21 से 34 वर्ष तक।
7) उत्तर प्रौढ़ावस्था - 50 से 64 वर्ष तक।
8) आरंभिक वृद्धावस्था - 75 वर्ष से अधिक की आयु

विकास के पक्ष

विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बालक-बालिकाओं के व्यवहार में विभिन्न प्रकार के अनेकानेक परिवर्तन होते हैं| बालक-बालिकाओं के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर विकास को अग्रांकित पक्षों में विभक्त किया जा सकता है-

1) शारीरिक विकास (Physical Development)
2) मानसिक विकास (Mental Development)
3) सामाजिक विकास (Social Development)
4) संवेगात्मक विकास (Emotional Development)
5) नैतिक विकास (Moral Development)

विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

शैशवावस्था - शैशवावस्था में विशेषकर प्रारंभिक वर्षों में विकास अत्यंत तीव्र गति से होता है| लम्बाई तथा भार में तीव्र गति से वृद्धि होती है| व्यक्ति के कुल मानसिक विकास का लगभग आधा भाग तीन-चार वर्ष की आयु तक पूर्ण हो जाता है |इस अवस्था में शिशु के सीखने की गति अत्यंत तीव्र होती है| शिशु में शब्दों,वाक्यों अथवा क्रियाओं को बार-बार दोहराने की प्रवृत्ति पाई जाती है|

बाल्यावस्था - बाल्यावस्था में शारीरिक तथा मानसिक विकास में स्थिरता आ जाती है| विकास की स्थिरता बच्चे की मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों को दृढ़ता प्रदान करती है,उसकी चंचलता कम होने लगती है तथा मस्तिष्क परिपक्वसा दिखाई पड़ता है|

किशोरावस्था - सामान्यतः किशोरावस्था 12 वर्ष की आयु से 18 वर्ष की आयु तक मानी जाती है। इस अवस्था को तूफान एवं संवेगों की अवस्था कहा गया है। इस अवस्था में किशोर के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक विकास में क्रांतिकारी परिवर्तन होते हैं। इस अवस्था में किशोर और किशोरियों में एक नवीन ऊर्जा का संचार होने लगती है। नवीन इच्छाए,अभिलाषाएँ उनमें तीव्र रूप से उठती है।

१.२.५ विकास को प्रभावित करने वाले कारक

विकास के स्वरुप तथा गति को अनेक कारक प्रभावित करते हैं| विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न पक्षों के लिए भिन्न-भिन्न कारक महत्वपूर्ण होते हैं | इन कारकों की वजह से विकास की प्रक्रिया में पर्याप्त परिवर्तन आ जाता हैं | विकास को प्रभावित क्रनेवाले कारक निम्नलिखित है |

1) आनुवंशिक कारक

विकास को प्रभावित करने वाले कुछ कारक आनुवंशिक्ता के आधार पर निर्धारित होते हैं और बच्चे/बच्चियां इन्हें अपने माता-पिता से उत्तराधिकार में प्राप्त करते हैं| बच्चा/बच्ची लगभग अपने मॉ-बाप के समान दिखता है। लंबे तथा दृष्ट-पुष्ट माता-पिता की संतान उन्ही के समान होते हैं| आँखें,त्वचा तथा बालों का रंग आदि वे विशेषताएँ है जो माता-पिता से बच्चों में आते हैं| बालक/बालिका कौन-कौन से अनुवांशिक तत्व (क्रोमोजोम, डी एन ए,आर एन ए) माँ-बाप से प्राप्त करेंगे, यह गर्भधारण के

समय ही निश्चित हो जाता है। व्यक्ति को वंशानुक्रम की प्रक्रिया के दौरान अनेक मानसिक योग्यता तथा गुण प्राप्त होते हैं जिन्हें वातावरण के द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता है| वास्तव में कोई भी व्यक्ति उससे अधिक विकास नहीं कर सकता जितना उसका वंशानुक्रम अनुमति देकर संभव बनाता है |परन्तु विभिन्न वंशानुगत विशेषताओं के विकास हेतु पर्यावरण द्वारा समर्थन भी आवश्यक है|

पर्यावरणीय कारक

1) जन्म से पूर्व परिवेश की परिस्थितियाँ

गर्भधारण के समय बच्चे/बच्ची का विकास माँ की शारीरिक स्थिति, मॉ के भोजन (आहार) और गर्भावस्था की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। अजन्मे बच्चे/बच्ची का पोषण माँ के रक्त से प्राप्त होता है| गर्भ में पल रहे बच्चे के विकास के लिए माँ को अतिरिक्त पोषक तत्व-प्रोटीन, कार्बोहायड्रेट, विटामिन, खनिज पदार्थ आदि आवश्यक तत्व मिलने चाहिए| कुपोषित माता का भ्रूण धीमी गति से विकसित होता है तथा इस स्थिति का भविष्य में संतान के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है | माँ का अपना स्वास्थ्य अजन्मे बच्चे को सबसे अधिक प्रभावित करता हैं |

२) पोषण

पोषण बच्चे के विकास और वृद्धि में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। खाद्य तथा पेय पदार्थ से प्राप्त होने वाले रासायनिक पदार्थ कोशिकाओं के निर्माण तथा मरम्मत के लिए तथा शारीरिक क्रियाओं को उपयोग में लाने के लिए अपेक्षित पोषक तत्व प्रदान करते हैं।

3) शारीरिक विकार तथा रोग

आनुवंशिक या पर्यावरणीय (जैसे-हादसा) कारकों से ग्रस्त बच्चों का शारीरिक विकास सामान्य न रहकर चुनौती पूर्ण हो जाता है| उदाहरण के लिए-दृष्टि बाधित विद्यार्थियों के लिए परिवार, समुदाय एवं विद्यालय में समायोजन जटिल होता है |

4) बुद्धि

बच्चे के विकास में बुद्धि की विशेष भूमिका होती है। उच्च श्रेणी की बुद्धि वालों का विकास तेजी से होता है, जबकि मंद या कम बुद्धि वालों का विकास अपेक्षाकृत धीमी गति से होता है। यह पाया गया है कि उत्कृष्ट बुद्धि वाले शिशु तेरह माह में चलने-फिरने लगते हैं जबकि अल्प बुद्धि वाले शिशु बाईस माह में तथा अती न्यून तीस माह में चलना फिरना शुरू करते है।

5) अंतःस्त्रावी ग्रन्थियाँ

व्यक्ति के शरीर के अंदर अनेक अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ कार्यरत होती हैं। इन ग्रंथियों का व्यक्ति के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है| ऐसे बच्चे जिसमें थायरोक्सिन (Thyroxin) का स्त्राव कम होता है,उनके मानसिक विकास की गति धीमी होती हैं|

6) भौतिक पर्यावरण

शुद्ध जल, शुद्ध वायु और सूर्य के प्रकाश का व्यक्ति के विकास पर गहरा असर पड़ता है क्योंकि ये सभी व्यक्ति के विकास के लिये आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है।

7) अभिप्रेरणा

शारीरिक और बौद्धिक विकास के लिये अभिप्रेरणा बहुत आवश्यक है। जहाँ शारीरिक विकास, अच्छा खाना-पीना, स्वस्थ जीवन आदि से गति प्राप्त करता है, वहीं बौद्धिक विकास शैक्षिक साधन, पुरस्कार, पदोन्नति आदि कारकों से अभिप्रेरित होता है।

8) परिवार की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति

व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक विकास में परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का गहरा प्रभाव पडता है। संपन्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति में पले-बढे बच्चे का विकास निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति के बच्चे से अच्छा होता है। संपन्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति के बच्चे को सभी सुविधाएँ ,अनुकूल परिस्थितियाँ तथा पर्याप्त अवसर उपलब्ध होते हैं जिनके कारण उनका विकास प्रायः तीव्र गति तथा से सकारात्मक होता है|

9) परिवार का वातावरण

परिवार के वातावरण का बालक के विकास पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है| शांत तथा सुखद वातावरण में बालक का विकास तीव्र गति से होता है जबकि दुखद व कलहपूर्ण वातावरण में बालक की विकास गति धीमी हो जाती है|

विकास के विभिन्न पक्ष

मानव की वृद्धि और विकास बचपन से मृत्युतक चलता रहता है जबकि बच्चे की वृद्धि एक समय के बाद रुक जाती है, लेकिन विकास निरंतर चलता रहता है। इनमें से बहुत से ऐसे परिवर्तन हैं जो आसानी से दिखाई नहीं देते हैं। ये दोनों तरह के परिवर्तन हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। विकास के प्रमुख आयाम निम्निलिखित हैं।

1) शारीरिक एवं गतिक-विकास (Physical and Motor Development)

2) मानसिक, बौद्धिक अथवा संज्ञानात्मक वकास (Mental, Intellectual or cognitive Development)

3) सामाजिक विकास (social Development)

4) संवेगात्मक विकास (Emotional Development)

5) भाषिक विकास (Language Development)

6) नैतिक या चारित्रिक विकास (Moral or Character Development)

7) सौन्दर्यात्मक विकास (Aesthetic Development)

1) शारीरिक एवं गतिक विकास (Physical and Motor Development)

शारीरिक विकास जन्म के पूर्व से ही शुरू होता है। इसके अंतर्गत शरीर में विविध प्रकार के परिवर्तन आते हैं। जन्म के बाद बच्चे कि मोटाई, ऊंचाई, भार इत्यादि में । शरीर के बाह्य ढाँचे और आन्तरिक अवयवों में कुछ न कुछ परिवर्तन आते रह्ते हैं यह विकास बहुत आसानी से अनुभव किया जाता है और दिखाई देता है।

2) मानसिक,बौद्धिक एवं संज्ञानात्मक विकास (Mental, Intellectual or cognitive Development)

मानसिक विकास मानसिक क्रियाओं तथा क्षमताओं से संबंधित है। बौद्धिक और मानसिक विकास ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत आयु तथा अनुभव में वृद्धि होने के साथ-साथ व्यक्ति के मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र के विकास भी योगदान होता है। मानसिक क्षमताएँ अनेक प्रकार की होती हैं | उनमें निम्निलिखित होती हैं-

विचार शक्ति (Power of Thinking)
स्मरण शक्ति (Power of Memorization)
तर्क शक्ति (Power of Reasoning)
निरीक्षण शक्ति (Power of Observation)
संवेदना शक्ति (Power of Sensation)
प्रत्यक्षीकरण (Power of Perception)
कल्पना शक्ति (Power of Imagination)
सामान्यीकरण शक्ति (Power of Generalization)
निर्णय शक्ति (Power of Judgement)
विभेदीकरण की शक्ति (Power of Discrimination)
समस्या समाधान योग्यता (Problem solving ability)
संप्रत्यय योग्यता (Conceptual ability)

सामाजिक विकास (Social Development)

सामाजिक विकास परिवार के सदस्यों और उससे बाहर के लोगों के साथ अंतःक्रिया के साथ शुरू होता है। जन्म के समय बच्चे जैविक प्राणी होते हैं और समाज में आ कर वह सामाजिक प्राणी बन जाते हैं। समाज में रहन- सहन सीखना, लोगों से संचार करना सामाजिक विकास का प्रमुख भाग होता है। सामाजिक विकास से अभिप्राय सामाजिक संबंधों में परिपक्वता से है।

संवेगात्मक विकास (Emotional Development)

आस-पास परिसर से आए अनुभव; व्यवहार सम्बधी अन्य गुण; आदतों आदि के साथ-साथ सुख,दुःख,प्रेम,घृणा,क्रोध आदि संवेगों का विकास व्यक्ति में धीरे-धीरे होता है। संवेगों को दो भागों में रखा गया है : सकारात्मक संवेग और नकारात्मक संवेग।

भय, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या आदि नकारात्मक संवेग है जबकि प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, हर्ष, प्रसन्नता, सृजनात्मकता आदि सकारात्मक संवेग है। संवेगों का विकास मानव व्यवहार के बोधात्मक पक्ष से अधिक घनिष्टता से जुड़ा होता है। बच्चे के ज्ञान और अनुभव में जैसे-जैसे वृद्धि होती है संवेगिक बुद्धि का भी विकास होता है|

भाषिक विकास (Language Development)

जन्म से ही बच्चा अपने परिसर से भाषा का ज्ञान प्राप्त करता है। आयु और अनुभवों में वृद्धि होने के साथ-साथ भाषिक विकास तीव्र होता है। शब्द सीखना,वाक्यों को सीखना, भाषा के विभिन्न रूपों को अर्जित करना भाषा विकास का विषय है। बच्चे चीजों को स्मरण रखने के बाद प्रतीकों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करने लगते हैं। अनुमान है कि बच्चों में डेढ़ वर्ष से 5 वर्ष की आयु के बीच भाषा अर्जन की गति सबसे तीव्र होती है।

नैतिक या चारित्रिक विकास (Moral or Character Development)

नैतिक विकास बच्चों को सही गलत का अंतर करने से जुड़ा है। सामाजिक प्राणी होने के कारण हमें समाज के मानदंडों के साथ रहना पड़ता है| इसलिये समाज में प्रचलित आदर्श और मूल्यों को अपनाना आवश्यक है। उम्र और अनुभवों के साथ-साथ बच्चे का नैतिक और चारित्रिक विकास होता है। उसमें समता,परोपकार और नैतिकता का विकास होता है |

सौंदर्यात्मक विकास (Aesthetic Development)

सौंदर्यात्मक विकास मे रुचि और अभिरुचि के अनुसार सौनन्दर्यात्मक बोध तथा कलात्मक प्रवृत्तियों का विकास भी सम्मिलित है।

शिक्षक के लिये वृद्धी और विकास के ज्ञान का महत्व क्यो जरूरी है?

शिक्षक बच्चे की वृद्धि और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षा तथा शिक्षक का उद्देश्य ही शिक्षार्थी का सर्वांगीण विकास करना होता है, इसीलिये शिक्षक को विकास के विविध पहलुओं के बारे में जानकारी होना आवश्यक है। हर एक बच्चा विशिष्ट होता है। इसलिये बच्चों का मनोविज्ञान समझने के लिये शिक्षक को इन सब की जानकारी होनी चाहिये। शिक्षकों को विद्यालय का पाठयक्रम तथा अन्य शैक्षिक कार्यक्रम शिक्षार्थी के विकास के पहलुओं को ध्यान में रखकर निर्मित किया जाना चाहिए। पाठ्येतर कार्यक्रमों का संचालन, परीक्षा पद्धति, मापन-मूल्यांकन करते समय विकास के पहलुओं को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। इससे शिक्षक को हर एक िवद्यार्थी की तरफ ध्यान रखना आसान हो जायेगा और उसका सर्वांगीणविकास करते समय वह मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण रख सकता है।

संवेगात्मक विकास का अर्थ

मानव व्यवहार के तीन पक्ष होते हैं- ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक। इन तीन पक्षों के संतुलित विकास पर मानव का अस्तित्व निर्भर करता है। भावात्मक अथवा संवेगात्मक विकास का तात्पर्य उस उत्तेजनापूर्ण अवस्था से है जो व्यक्ति केशरीर एवं मस्तिष्क को अशान्त या अस्थिर बना देती है तथा जिसके परिणामस्वरूप वह कार्य को करने हेतु उत्तेजित होता चला जाता है। संवेग वह भावात्मक अनुभूति है जो व्यक्ति की मानसिकता एवं शारीरिक उत्तेजनापूर्ण अवस्था तथा सामान्यीकृत आन्तरिक समायोजन के साथ जुड़ी होती है तथा उसकी अभिव्यक्ति प्रकट व्यवहार के द्वारा होती है।संवेग की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार है:

संवेगों की विशेषताएँ

1) एक संवेग से विभिन्न संवेग पैदा होते हैं।

2) संवेगों का क्षेत्र व्यापक होता है।

3) संवेग व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं से सम्बन्धित होता है।

4) संवेगों की उत्पत्ति अचानक ही होती है तथा धीरे-धीरे से समाप्त हो जाती है।

5) प्रत्येक संवेग के पीछे कोई भावना कार्य करती है | यही भावना बच्चे को कार्य करने हेतु विवश करती है।

संवेगात्मक विकास में शिक्षक की भूमिका

परिवार के पश्चात विद्यालय ही ऐसा स्थान है जहाँ बच्चे अपना ज्यादा समय बिताते हैं। बच्चों पर शिक्षकों के व्यवहार का बड़ा प्रभाव पड़ता है अतः बालकों के संवेगात्मक विकास की दृष्टि से शिक्षकों की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण होती है-

1) बालकों में अनुकरण प्रवृत्ति पाई जाती है, अतः शिक्षक को स्वयं को संवेगात्मक रूप से सुसंगठित एवं नियंत्रित आदर्श रूप प्रस्तुत करना चाहिए ताकि शिक्षार्थी उनका अनुकरण कर अपना विकास कर सकें।

2) शिक्षक को अपने शिक्षार्थियों के साथ स्नेहयुक्त व्यवहार करना चाहिए जिससे बालकों में सहयोग, स्नेह और आदर की भावना का विकास हो सके।

3) सीखने की प्रक्रिया में संवेगों का विशेष महत्व होता है। अतः शिक्षक को इस ओर भी संतुलन बनाए रखने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि स्वास्थ्य एवं नियंत्रित संवेग ही अधिगम की कुशलता का बालकों में विकास करते है।

4) स्वास्थ्य, शारीरिक विकास तथा संवेगात्मक विकास के बीच परस्पर गहन संबंध होता है। शिक्षक बालकों की बीमारियों तथा शारीरिक एवं मानसिक कमजोरियों से उनके अभिभावकों को परिचित करा सकते है और उनको दूर करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

5) शिक्षक पाठयक्रम एवं पाठ्य सहगामी क्रियाओं की सहायता से बालकों के संवेगों की अभिव्यक्ति हेतु उचित वातावरण प्रदान कर सकता है।

अपनी प्रगति की जाँच ४

1) परिपक्वता का सम्बन्ध --------- से है।
2) विकास के दो आधार है ------- और ------- ।
3) विकास की प्रक्रिया जीवनपर्यन्त एक ------- से चलती है।

लघुउत्तरीय प्रश्न.

1) विकास किसे कहते है?
2) अभिवृद्धि की व्याख्या कीजिए।

.....
.....
.....

१.२.६ वृद्धि और विकास :कुछ विचारणीय मुद्दे

अब तक आपने वृद्धि और विकास की अवधारणा, तथा उनके विभिन्न चरणों की विशेषताओं के बारे में पढ़ा। अब हम उन मुद्दों के बारे में जानेंगे जो विकास की प्रक्रिया को समझने में महत्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं| इनके द्वारा एक शिक्षक के रुप में हमें शिक्षार्थी के विकासात्मक आयामों को समझने में मदद मिलेगी।

सतत या असतत विकास

"एक बालिका अपनी खिलौना गाड़ी से खेल रही थी। इस दौरान वह खिलौना गाड़ी को चलाते हुए धर्स्धर्र की आवाज करती है। इसे मोड़ते हुए वह पीपी जैसी आवाज करती है।"

विकासात्मक मनोवैज्ञानिक इस उदाहरण की दो दृष्टियों से व्याख्या करते हैं। प्रथम दृष्टि के अनुसार बालिका का व्यवहार 'बड़ों' जैसा है लेकिन उसमें कुशलता और पूर्णता का अभाव है। इस दृष्टि के अनुसार पसिक्व और अपरिपक्व के बीच केवल कार्य प्रदर्शन में जटिलता के स्तर का अंतर है। अतः विकास की प्रक्रिया सतत होती है। इस दौरान व्यक्ति चिंतन, व्यवहार और प्रदर्शन की कुशलताओं को समृद्ध करता रहता है।

दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार विकास की अवस्था के कारण बालिका इस प्रकार का व्यवहार कर रही है। उम्र के बढ़ने पर उसकी सोच और व्यवहार में बदलाव होगा| इस बदलाव में केवल कुशलताओं में मात्रात्मक वृद्धि नहीं होती बल्कि गुणात्मक अंतर भी होता है जो उम्र में वृद्धि का प्रतिफल होता है। यह दृष्टिकोण विकास की अवस्था आधारित प्रक्रिया मानता है।इस दृष्टि से विकास में विच्छिन्नता होती है और एक अवस्था का चरण दुसरे चरण के अवस्था से गुणात्मक रुप से भिन्न होता है

सार्वभौमिक या संदर्भबद्ध

जब हम यह मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का विकासक्रम एक होता है और एक समान विकास चरणों से होते हुए पूर्ण होता है तो यह दृष्टि विकास को सार्वभौमिक मानती है। जो सिद्धान्त इस मान्यता को स्वीकारते हैं वे विकास के उन अवयवों पर बल देते हैं जो जैविकीय विशेषताओं के प्रतिफल होते हैं और प्रत्येक देश-काल में जिसकी पुनरावृत्ति होती है।

इसके विपरीत जब हम यह मानते हैं कि व्यक्ति के विकास क्रम को उसका विकासात्मक संदर्भ प्रभावित करता है तो यह दृष्टि विकास को संदर्भबद्ध मानती है। जो सिद्धान्त इस मान्यता को स्वीकारते हैं वे संदर्भ और पारिस्थितिकी(ecology) के विभिन्न पहलुओं जैसे-संस्कृति, अर्थव्यवस्था, भौतिक परिवेश, मूल्य आदि को महत्व देते हैं ।

प्रकृति और पोषण (Nature & Nurture) का सापेक्षिक प्रभाव

विकास की प्रक्रिया में प्रकृति और पोषण के सापेक्षिक प्रभाव को लेकर भी विकास के अध्येताओं में बहस जारी है। जहाँ प्रकृति का अर्थ मानव की जैवकीय और वंशानुगत विशेषताओं से है, वहीं पोषण का अर्थ परिवेश के भौतिक-सांस्कृतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक अवयवों और उनसे सीखने के संयुक्त प्रभाव से है। प्रत्येक सिद्धान्त में इस सापेक्षिक प्रभाव को देखा जा सकता हैं। संज्ञानात्मक विकास से जुड़े सिद्धान्तों में आप ऐसी व्याख्याएँ पाएँगे-

"एक वयस्क द्वारा जटिल समस्या का समाधान इसलिए किया जा सकता है क्योंकि उम्र के अधिक होने के कारण उसके पास उच्च संज्ञानात्मक क्षमता है"।

"एक वयस्क द्वारा जटिल समस्या का समाधान इसलिए किया जा सकता है क्योंकि समुदाय से अन्तःक्रिया के कारण उसे ऐसी समस्याओं से निपटने के तौर तरीके मालूम है।

ऊपर दिए गए पहले उदाहरण में संज्ञानात्मक विकास के लिए प्रकृति का योगदान अधिक है जबकि दूसरे उदाहरण में पोषण का योगदान अधिक है| प्रकृति और पोषण के सापेक्षिक प्रभाव को वैयक्तिक भिन्नता की व्याख्या द्वारा भी देख सकते हैं। वैयक्तिक अंतर के लिए यदि प्रकृति उत्तरदायी है तो वह अंतर प्राकृतिक है और उसका बने रहना स्वाभाविक है। लेकिन यदि वैयक्तिक अंतर पोषण का परिणाम है तो यह प्रदत्त (दिया हुआ) न हो कर निर्मित होगा। अतः इसे निर्मित करने वाली परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए।

१.३ सारांश

मानव की वृद्धि जन्म के बाद तीव्र गति से शुरू होती है | शुरू हो जाती है। वृद्धि के साथ-साथ व्यक्ति का विकास होता है। विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। अभिवृद्धि और विकास की प्रक्रियाएँ उसी अवाधिं में आरम्भ हो जाती है जिस समय शिशु गर्भ में होता है। वृद्धि निश्चित आयु के बाद ठहर जाती है जबकि विकास जीवनपर्यंत चलता रहता है। विकास की सामान्य रूप से पांच अवस्थाएँ होती है-

१ शैशवावस्था २ बाल्यावस्था ३ किशोरावस्था ४ प्रौढ़ावस्था ५ वृद्धावस्था

विकास को प्रभावित करने वाले कई कारक होते है | इन्हें हम दो मुख्य श्रेणियों में रख सकते है :

1)आनुवंशिक कारण 2)मानसिक-सामाजिक पर्यावरण/परिवार और संस्कृति

१.४ अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

अपनी प्रगति की जाँच १ उत्तर अध्याय १.२.१ देखे |

अपनी प्रगति की जाँच २ उत्तर अध्याय १.२.२ देखे |

अपनी प्रगति की जाँच ३ उत्तर अध्याय १.२.३ देखे |

अपनी प्रगति की जाँच ४ उत्तर अध्याय १.२.४ देखे |

१.५ शब्दावली :-

1 अभिवृद्धि का अर्थः व्यक्ति के स्वाभाविक विकास को अभिवृद्धि कहते हैं।

2 विकास का अर्थः- विकास यह संपूर्ण अभिवृद्धियों का संगठन है। विकास निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

3) शैशवावस्था - जन्म से 5 या 6 वर्ष तक।

4) बाल्यावस्था - 5 या 6 वर्ष से 12 वर्ष तक।

5) किशोरावस्था - 12 वर्ष से 18 वर्ष तक|

6) प्रौढावस्था - 18 वर्ष के बाद|

7) वृद्धावस्था

१.६ कार्य आवंटन

१) वृद्धि और विकास में भेद स्पष्ट कीजिए |

१.७ क्रियाएं

1) इरिक्सन द्वारा बताई गयी आठ अवस्थाओं का उल्लेख कीजिए?

१.८ प्रकरण अध्ययन (केस स्टडी)

1) विकास से आप क्या समझते हैं? इसकी प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

2) अभिवृद्धि और विकास के अन्तर को स्पष्ट करते हुए उनके मुख्य सिद्धांत का वर्णन कीजिए।

१.९ सन्दर्भ पुस्तकें

1)सिंह,अरुण कुमार,सिंह आशीष कुमार,व्यक्तित्व का मनोविज्ञान,मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन.दिल्ली,२०००.

2) पाठक,पी.डी.,शिक्षा मनोविज्ञान,आगरा :अग्रवाल पब्लीकेशन्स.

3) पाठक, आर.पी., उच्च शिक्षण मनोविज्ञान PEARSON पब्लीकेशन

4)गुप्ता एस.पी./गुप्ता अलका.,उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान,शारदा पुस्तक भवन,इलाहाबाद.

5) वालिया जे.एस,अधिगमकर्ता ,अधिगम एवं संज्ञान

6) अरुण कुमार सिंग,शिक्षा मनोविज्ञान

7) मंगल,एस.के.,शिक्षा मनोविज्ञान, दिल्ली,:पी.एच.आय.लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड,२०१५

8) Baron,Robert A.,Misra G.,Psychology,Pearson Publication,Delhi 2014.

इकाई २ संज्ञानात्मक विकास

इकाई की संरचना

२.० शिक्षण उद्देश्य

२.१ परिचय

२.२ विषय विवेचन

२.२.१ संज्ञान का अर्थ

२.२.२ पियाजे का सिद्धांत

२.२.२ पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत के शिक्षाशास्त्रीय प्रभाव

२.२.३ वायगॉत्सकी का सिद्धांत

२.२.४ भाषा की भूमिका,सीखना और विकास

२.३ सारांश

२.४ अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

२.५ शब्दावली

२.६ कार्य आवंटन

२.७ क्रियाएँ

२.८ प्रकरण अध्ययन [केस स्टडी]

२.९ सन्दर्भ पुस्तकें

२.0 शिक्षण उद्देश्य

इस इकाई से आप निम्नांकित को समझेंगे-

१. पियाजे के सिद्धांत का परिचय प्राप्त करेंगे। संज्ञानात्मक संरचनाओं और प्रक्रियाओं के बारे में समझ बनाएंगे |

२. वायगाँत्सकी के सिद्धांत की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे|

३. संज्ञानात्मक विकास में भाषा की भूमिका को समझ सकेंगे |

२.१ इकाई परिचय

जीन पियाजे को संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में कार्य करने वाले तत्कालीन मनोवैज्ञानिकों में सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति के रुप में स्वीकार किया जाता है| पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाएँ क्रमशः संवेदी पेशीय अवस्था, पूर्व संक्रियात्मक अवस्था, मूर्त-संक्रियात्मक अवस्था तथा औपचारिक -संक्रियात्मक अवस्था हैं | वायगाँत्सकी बाल-विकास के क्षेत्र में अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण के प्रतिपादन और विकास के लिए जाने जाते हैं। उनके अनुसार बच्चे का विकास उसके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश के साथ उसको अन्तःक्रिया पर निर्भर होता है।

२.२ विषय विवेचन

२.२.१ संज्ञान का अर्थ

संज्ञान का अर्थ उन आन्तरिक मानसिक प्रक्रियाओं तथा उत्पादों से है जिनसे ज्ञान का निर्माण होता है। इसके अंतर्गत विभिन्न मानसिक प्रकियाएं आती हैं जैसे- याद रखना, संकेतीकरण, योजना बनाना, समस्या-समाधान, वर्गीकरण करना, याद करना, कल्पनाएँ करना, नई चीजों एवं संकल्पों का सृजन आदि। मनुष्य के जीवन में संज्ञानात्मक विकास का विशेष महत्व है। इसी कारण मनुष्य स्वयं को वातावरण के अनुरूप भी ढाल पाते हैं और आवश्यकता पड़ने पर वातावरण को भी अपने अनुसार ढाल पाते हैं। एक शिक्षक के लिए संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया को जानना अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रक्रिया को जानने के बाद ही शिक्षक यह जान पाते हैं कि बच्चे किस प्रकार सीखते हैं, सीखने के दौरान कौन-कौन सी प्रक्रियाओं से गुजरते हैं, बच्चे को किस आयु में क्या-क्या सिखाया जा सकता है? यह आवश्यक नहीं है कि एक आयु के सभी बच्चे एक ही प्रकार से सीखें। हर बच्चे के सीखने-सोचने का तरीका भी अलग होता है। अतः हर बच्चे की सोच को समझकर ही उसे पढ़ाया जाता है। अतएव एक शिक्षक के लिए संज्ञान को समझना अत्यंत आवश्यक है।

संज्ञान का संबंध ज्ञान प्राप्त करने या जानने की प्रक्रिया से है। इसमें मानसिक प्रक्रियाओं जैसे- चिंतन, समस्या-समाधान, तर्क करना तथा निर्णय लेना आदि सम्मिलित है। चूँकि विकास की प्रक्रिया समय के साथ होने वाले गुणात्मक परिवर्तनों को व्यक्त करती है इसलिए संज्ञानात्मक विकास में हम यह जानने का प्रयास करते हैं कि दुनिया को जानने के लिए बच्चों का ढंग या उनका चिंतन समय के साथ कैसे बदलता है? संज्ञानात्मक विकास के बारे में हमारा वर्तमान ज्ञान जीन पियाजे के अध्ययनों का विशेष रूप से ऋणी है। आइए, उनके सिद्धान्त पर विस्तार से विचार किया जाए।

अपनी प्रगति की जाँच १

संज्ञान का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

२.२.२ पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत

पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त बाल विकास के क्षेत्र में एक क्रांतिकारी योगदान है। स्विटजरलैंड निवासी जीन पियाजे (1896-1980) ने प्राणी-विज्ञान में अपनी आरंभिक शिक्षा प्राप्त की। इसलिए पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत में उनकी प्रारंभिक शिक्षा, जीव विज्ञान का बहुत अधिक प्रभाव दिखता है। पियाजे के अनुसार बच्चे शुरुआत से ही बड़े लोगों की तरह संकल्पनाओं को नहीं समझते बल्कि अपने प्रत्यक्षण (Perception) और अपनी पेशीय गतिविधियों (Motor Activities) द्वारा संकल्पनाओं का निर्माण एवं उनमें संशोधन करते हैं। बच्चे अपने अनुभवों को संगठित कर अपने वातावरण को समझते हैं। इस प्रक्रिया के दौरान बच्चे सक्रिय रहते हैं। पियाजे बच्चे को एक खोजी (Discoverer) और ज्ञान के निर्माता के रूप में देखते हैं क्योंकि बच्चे अपनी गतिविधियों के द्वारा ही ज्ञान का निर्माण करते हैं। इसलिए पियाजे इस सिद्धांत को रचनावादी (constructivist) दृष्टिकोण भी कहते हैं।

संज्ञानात्मक विकास की मुख्य विशेषताएँ

पियाजे के अनुसार बच्चे के खोजपूर्ण (exploratory) व्यवहार से लेकर अमूर्त, तर्कसंगत विचार निर्माण तक की यात्रा में सभी बच्चे चार अवस्थाओं से गुजरते हैं-

1) सांवेदिक पेशीय अवस्था (Sensory Motor)
2) पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (Pre Operational)
3) मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (Concreate Operational)
4) अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था (Formal Operational)

संज्ञानात्मक विकास केवल नए तथ्यों और विचारों की जानकारी तक ही सीमित नहीं है। पियाजे के अनुसार, सोचने की प्रक्रिया में लगातार बदलाव आता है| यह बदलाव धीमी गति से जन्म से परिपक्व होने तक चलता रहता है क्योंकि हम अपने आस-पास के वातावरण की समझ बनाना चाहते हैं। पियाजे के अनुसार चार ऐसे कारक हैं जिनके परस्पर संबध और प्रभाव से संज्ञानात्मक विकास घटित होता है-

1) जैविक परिपक्वता (Biological Maturation)
2) गतिविधि (Activity)
3) सामाजिक अनुभव (Social Experience)
4) संतुलीकरण (Equilibration)

वातावरण की समझ बनाने का सबसे महत्वपूर्ण कारक है- जैविक परिपक्वता। यह आनुवांशिक रूप से मौजूद जैविक बदलावों के कारण होती है। अभिभावकों और शिक्षकों का संज्ञानात्मक विकास के इस पहलू पर बहुत ही कम प्रभाव पड़ता है| वे केवल बच्चों के स्वास्थ्य के लिए पोषण एवं देखभाल का ध्यान रख सकते हैं। गतिविधि भी संज्ञानात्मक विकास का एक अति महत्वपूर्ण नियामक है। शारीरिक परिपक्वता के साथ-साथ वातावरण में गति करने की क्षमता का विकास होता है जिससे बच्चा और अधिक सीखता है। शारीरिक विकास के कारण बच्चा वातावरण में बहुत से कार्य कर सकता है जैसे अवलोकन,अन्वेषण, परीक्षण और अंत में ज्ञान का संगठन। इसी के कारण बच्चे के ज्ञान में वृद्धि होती है। जैसेजैसे हम बड़े होते हैं हम अपने आसपास के लोगों के सम्पर्क में आने लगते हैं। पियाजे के अनुसार, हमारे संज्ञानात्मक विकास में सामाजिक अनुभव (Social Experience) अर्थात् दूसरों से सीखने का भी महत्व है। बिना सामाजिक प्रसारण के हमें हमारी संस्कृति और समाज को शुरु से समझने का प्रयास करना पड़ेगा। हमें सदैव शून्य से शुरुआत करनी पड़ेगी। समाज से सीखना इस बात पर निर्भर करता है कि हम संज्ञानात्मक विकास की किस अवस्था में है? परिपक्वता, गतिविधि तथा सामाजिक प्रसारण सभी के परस्पर कार्य करने से संज्ञानात्मक विकास संभव हो पाता है।

पियाजे ने जीव-विज्ञान के अपने प्रारम्भिक शोधों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि प्रत्येक प्रजाति में दो मूलभूत प्रवृत्तियाँ होती है- संगठन और अनुकूलन करने की क्षमता ।

संगठन (Organisation) - संगठन ज्ञान और अनुभवों को मानसिक तंत्रों में सुव्यवस्थित करने की सतत् प्रक्रिया है। मानवमें विचारों की प्रक्रिया के संगठनों को मनोवैज्ञानिक संरचनाओं में ढालने की जन्मजात प्रवृत्ति होती है। इन मनोवैज्ञानिक संरचनाओं द्वारा ही हम वातावरण को समझते हैं तथा उनसे जुड़ पाते हैं। सामान्य संरचनाएं धीरे-धीरे जुड़ती चली जाती हैं और समन्वित होकर अधिक जटिल एवं प्रभावशाली हो जाती हैं। पियाजे ने इन मानसिक संरचनाओं एवं प्रत्यक्षीकरण तथा अनुभवों के समूह को 'स्कीमा' का नाम दिया है। स्कीमा विचारों की मूलभूत इकाई है। यह क्रिया और विचारों की एक सुव्यवस्थित प्रणाली है जिसके द्वारा हम संसार की वस्तुओं और घटनाओं के बारे में सोच पाते हैं तथा मस्तिष्क में उसकी एक छवि बना पाते हैं। स्कीमा बहुत ही छोटे और विशिष्ट और बहुत अधिक बड़े तथा बहुत विस्तृत भी हो सकते है। जैसेजैसे मानव के विचार की

प्रक्रिया संगठित होती जाती है और नए स्कीमा का विकास होता है वैसे ही उसका व्यवहार अधिक परिपक्व,जटिल और अनुकूलित होता जाता है।

अनुकूलन करने की क्षमता - मनोवैज्ञानिक संरचनाओं को संगठित करने की प्रवृत्ति के साथ ही बच्चे में वातावरण के अनुकूल होने की प्रवृत्ति भी होती है। पियाजे का यह विश्वास था कि पौधों और पशुओं की ही तरह मनुष्य भी अपने भौतिक और सामाजिक वातावरण के साथ, जिसमें वे रहते हैं, अपने को अनुकूलित करते हैं। पियाजे ने अनुकूलन(Adaption) को दो मूल प्रक्रियाओं- समावेशन(Assimilation) तथा समायोजन(Accomodation) के रूप में लिया। समावेशन उस प्रक्रिया को कहते हैं, जिसके द्वारा नई वस्तुएँ और घटनाएँ ग्रहण की जाती हैं और वर्तमान संरचनाओं या स्कीमा के क्षेत्र में समाविष्ट किया जाता है। समायोजन वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा नई वस्तु या घटना को सीधे-सीधे ग्रहण करने या समाविष्ट करने में होने वाले प्रतिरोध को दूर करने के लिए पहले से मौजूद संज्ञानात्मक स्कीमा या संरचना को परिमार्जित किया जाता है। मान लीजिए एक छह महीने की आयु का बच्चा वस्तु को हाथ बढ़ाकर पकड़ने के लिए अभ्यस्त है। अगली बार वह एक बड़े आकार की वस्तु को पकड़ने का प्रयास करता है। यदि बच्चा सफलतापूर्वक नई वस्तु तक पहुँच जाता है और उसेग्रहण कर लेता है तो पियाजे के अनुसार नई वस्तु सफलतापूर्वक समविष्ट(Assimilate) कर ली गई है। चूंकि नई वस्तु पहले वाली वस्तु से बड़े आकार की है इसलिए बच्चे को कुछ श्रम करना पड़ेगा। उसे हथेली को चौड़ा कर फैलाना होगा, नहीं तो उसकी कोशिश सफल नहीं होगी। इस तरह नई वस्तु के लिए पहले से मौजूद स्कीमा को परिवर्तित करना होगा। पियाजे मानसिक संरचना के इस तरह के आंतरिक परिवर्तन को समायोजन कहते हैं।

संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाएँ

पियाजे का मानना था कि सभी बच्चे संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाओं से क्रमशः गुजरते हैं। इन अवस्थाओं को सामान्यतः विशेष आयुवर्ग के साथ जोड़ा जाता है। पियाजे के अनुसार बच्चे किसी एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक पहुँचनेमें कम या अधिक समय लगा सकता है या फिर वे किसी स्थिति में एक ही अवस्था की विशेषताएँ भी दर्शा सकते हैं या फिर किसी अन्य स्थिति में उच्चतर या निम्नतर अवस्था की विशेषताएँ भी दर्शा सकते हैं। अतः बच्चे की केवल आयु के आधार पर हम यह नहीं बता सकते कि वह किस प्रकार सोच रहा है | पियाजे आयु के स्थान पर चरण (Stage) को पसंद करते हैं जो आयु से व्यापक होता है |

शैशवावस्था - संवेदी पेशीय अवस्था (0-2 वर्ष)

संज्ञानात्मक विकास के प्रारंभिक काल को संवेदी पेशीय अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में बच्चा अपनी सांवेदिक इंद्रियों (देखना, सुनना, चलना, छूना, चखना आदि) एवं पेशीय गतिविधियों द्वारा सीखता है। ये बच्चे वस्तु स्थायित्व (Object Permanence) के विकास को दर्शाते हैं। इसका अभिप्राय है कि बच्चा यह समझने लगता है कि यदि कोई वस्तु उसके सामने उपस्थित नहीं है तो भी उसका अस्तित्व रह सकता है यद्यपि बच्चा उसका इन्द्रियों से साक्षात् अनुभव नहीं भी कर पाता है । यहीं से बच्चों में मानसिक निरूपण (Mental Representation) की क्षमता का विकास होता है। वस्तु स्थायित्व(object permanence) से पहले बच्चों से चीजें लेकर छिपाना बहुत ही आसान होता है लेकिन इसके विकास के बाद बच्चे छुपायी गई वस्तु को यहां-वहां देखने और खोजने का प्रयास करने लगते हैं | इससे यह पता चलता है कि बच्चे को यह समझ है कि अपने सामने नहीं होने पर भी वस्तु मौजूद रहती है। संवेदी पेशीय अवस्था की एक मुख्य उपलब्धि यह भी है कि इसमें उद्देश्यपूर्ण कार्यो की शुरुआत होती है। इस अवस्था में बच्चे बड़ों के व्यवहार को दोहराते हैं। वे बड़ों की कही हुई बातों को याद रखकर उन्हीं के व्यवहार को उनकी अनुपस्थिति में दोहराते हैं। नकल उतारने जैसा व्यवहार (Deferred imitation) करते है। वे रोजाना दिखाने वाली गतिविधियों की नकल भी उतारते है तथा काल्पनिक गतिविधियाँ भी करते हैं। जैसे- खाना बनाने आदि का अभिनय करना। ऐसे खेलो को बनावटी खेल (Make-Believe play) कहते हैं।

पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (2-7 वर्ष)

संवेदी-पेशीय अवधि के अंत तक बच्चे बहुत्सी क्रियाएं (Actions)करने लगते हैं। इस अवस्था में बच्चे मानसिक संक्रियाएँ (Operation) करना प्रारंभ करते हैं। मानसिक संक्रिया से अभिप्राय है कि सोच के साथ क्रियाएँ करना एवं मन-मस्तिष्क में समस्या को हल करने का प्रयास करना। पूर्व संक्रियात्मक अवस्था में बच्चे निपुणता की ओर बढ़ते हैं परंतु वह अभी पूर्ण रूप से मानसिक संक्रियाओं के उपयोग में निपुण नहीं होते इसीलिए इसे पूर्व संक्रियात्मक अवस्था कहते हैं।

इस अवस्था में बच्चे हर कार्य शारीरिक क्रियाओं से न करके, सांकेतिक मानसिक क्रियाओं द्वारा करने का प्रयास करते है। इस अवस्था में बच्चे शब्द, संकेत,चिन्ह, हाव-भाव आदि का प्रयोग कर पाते हैं। यह इस अवस्था की सबसे बड़ी उपलब्धि है। उदाहरण के लिए बच्चे घोड़ा शब्द या घोड़े के चित्रों का प्रयोग या फिर तकिये पर बैठकर घोड़ा चलाने का प्रयास करते हैं, जबकि घोड़ा असल मे सामने प्रस्तुत नहीं होता है। इस प्रकार प्रतीकों जैसे- भाषा, चित्र, चिन्ह या हावभाव का प्रयोग करने की क्षमता जिससे हम किसी वस्तु या क्रिया को मानसिक प्रक्रिया द्वारा दर्शाते हैं, उसे लाक्षणिक कार्य (Semiotic functions) कहते हैं। जैसे- खाली कप से पानी पीने का नाटक करना आदि। बच्चों के व्यवहार धीरे-धीरे विस्तृत होते जाते हैं। इस अवस्था में भाषा का विकास बहुत अधिक तेजी से होता है। 2-4 वर्ष के बच्चों की भाषा में 200 से 2000 शब्दों तक की वृद्धि होती है।

इस अवस्था के दौरान बच्चों की वस्तुओं के विषय में सांकेतिक रूप में सोच केवल एक ही दिशा तक सीमित हो पाती है। उनके तर्क केवल एक ही दिशा में विकसित होते हैं। बच्चों के लिए उल्टा सोचना अर्थात किसी कार्य के चरणों को अंत से प्रारंभ तक सोच पाना मुश्किल होता है जैसे दो और दो चार होते हैं, वे यह तो सोच सकते हैं लेकिन चार में से दो कम होने पर दो होगा, यह सोच पाना मुश्किल होता है। अतः इस अवस्था के बच्चों के लिए प्रतिवर्ती सोच (Reversible thinking) मुश्किल होती है जैसे द्रव्य संरक्षण (Conservation)के दौरान बच्चा यह सोच नहीं पाता है कि यदि अलग प्रकार के बर्तनों में पानी की मात्रा बराबर है यदि हम चौड़े बर्तन के पानी को लंबे बर्तन में डालने के बारे में सोच सके।

संरक्षण का अर्थ है कि किसी वस्तु की संख्या, द्रव्यमान और भार पर उसके रूप परिवर्तन का प्रभाव नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए यदि दस टॉफियों को पास-पास रखा जाए या दूर-दूर या फिर पंक्तियों में रखा जाए या वृत्ताकार परंतु सभी ही रूपों में टॉफियों की संख्या समान ही रहेगी।

पियाजे के अनुसार इस अवस्था में बच्चे केवल एक ही तर्क पर अपना ध्यान केंद्रित कर पाते हैं। जैसे गिलास वाले जल संरक्षण कार्य के दौरान बच्चे केवल गिलास में पानी की ऊँचाई पर ध्यान दे पाते हैं। उनसे उस दौरान, एक स्थिति में एक से अधिक तर्कों पर ध्यान नहीं दिया जाता है जिसे विकेंद्रीकरण (Decentering) भी कहते हैं। अतः इस अवस्था में बच्चे का सोचना वातावरण के प्रत्यक्ष इंद्रिय अनुभव तक ही सीमित बना रहता है।

पूर्व संक्रियात्मक अवस्था के दौरान बच्चे की सोच एक तरफ से आत्मकेंद्रित (Egnocentric) होती है अर्थात् बच्चे के लिए आसपास के सभी अनुभव उसी प्रकार होते हैं, जैसे उसके खुद के अनुभव हों। उदाहरण के लिए यदि दो साल की स्नेहा को चूहों से डर लगता है, तो उसके अनुसार उसकी उम्र के सभी बच्चों को चूहों से डर लगता है। इस अवस्था में बच्चे अपने ही दृष्टिकोण, भावों और प्रतिक्रियाओं तक ही सीमित रहते हैं। यही कारण है कि इस उम्र में बच्चे यह नहीं समझ पाते कि उनके सामने खड़े व्यक्ति का सीधा हाथ उसी दिशा में नहीं है जहां उनका अपना हाथ है।

पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था के बच्चों के लिए वस्तुओं को उनकी श्रेणी तथा उपश्रेणी में बाँटने (Categorization) में दिक्कत आती है। उदाहरण के लिए, यदि बच्चे को 16 फूल दिखाए जाएँ, जिनमें से 12 लाल और 4 नीले हों और उनसे पूछा जाए कि क्या लाल फूल ज्यादा है या कम तो बच्चा यह नहीं सोच पाता कि लाल और नीले फूल, एक बड़ी श्रेणी 'फूल' में ही आते हैं। पूर्व संक्रियात्मक अवस्था के दौरान बालकों के बनावटी खेल और जटिल हो जाते है। वे दूसरे बच्चों के साथ मिलकर सामाजिक-नाटकीय खेलों के दौरान मम्मी-पापा का नाटक करना, मैडम बनकर बच्चों को पढ़ाना आदि खेलते हैं।

मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (7-11 वर्ष)

मूर्त-संक्रियात्मक अवस्था में बच्चे वातावरण में उपस्थित तार्किक स्थायित्व (logical Stability) को समझ पाते हैं। वह यह जान पाते हैं कि आकृति या आकार में परिवर्तन के बावजूद वस्तुओं की कुछ विशेषताएँ समान या अपरिवर्तित रहती है तथा यह परिवर्तन हम चरणों को अंत से प्रारंभ तक करके भी देख सकते हैं।

पियाजे के अनुसार बच्चे इस अवस्था में संरक्षण की समस्याओं के समाधान में सुधार कर पाते हैं | इस अवस्था में आ कर तर्क के तीन मुख्य पहलुओं का विकास होता है। पहला, यदि किसी वस्तु में कुछ जोड़ा या घटाया जाए तो वह समान रहती है चाहे उसके बाहरी रूप में परिवर्तन कर दिया जाए। इसे पहचान (Identity) कहते हैं। दूसरा, प्रतिपूर्ति (Compensation) है| अर्थात् यदि एक दिशा में बदलाव है तो दूसरी दिशा में भी बदलाव होगा जैसे यदि गिलास पतला है तो पानी की ऊँचाई में वृद्धि होगी। तीसरा ,प्रतिवर्तन (Reversiblity) अर्थात् बच्चे बदलाव को, अंतिम से प्रारंभिक चरण तक मानसिक रूप से सोच सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि चौड़े मुँह के बर्तन से लंबे मुंह के बर्तन में पानी डाला जाए, तो पानी की ऊँचाई का स्तर क्या होगा, वे यह सोच पाने में सक्षम होते हैं।

इस अवस्था में बच्चों में वर्गीकरण करने की क्षमता का विकास होता हैं। बच्चे एक विशेषता के आधार पर चीजों को समूह में बांट सकते हैं। जैसेः- मुर्गा, शतुरमुर्ग आदि सभी पक्षी की श्रेणी में आते हैं। वे वस्तुओं को छोटे से बड़े के क्रम और बड़े से छोटे के क्रम में भी लगा सकते है जिसे क्रमबद्धता (Seriation) कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि राम, श्याम से लंबा है और श्याम, हिना से लंबा है तो राम, हिना से लंबा है।

इस अवस्था में वर्गीकरण, संरक्षण, क्रमबद्धता, प्रतिवर्तन आदि संज्ञानात्मक विशेषताओं के साथ ही बच्चे की सोच की एक जटिल और पूर्ण संरचना का विकास होता है। इस अवस्था की एक सीमा यह है कि बच्चे की सोच केवल मूर्त स्थिति या भौतिक यथार्थ (physical Reality) तक ही सीमित होती है। बच्चा तर्क को केवल मूर्त स्थितियों में प्रयुक्त कर सकता है। वे काल्पनिक तथा अमूर्त समस्याओं के विषय में नहीं सोच पाते हैं। साथ ही वे उन स्थितियों के बारे में भी नहीं सोच पाते जिनमें एक साथ कई क्रियाओं का प्रयोग होता है। इनकी विशेषताओं का विकास बाद में घटित होता है।

अमूर्त-संक्रियात्मक अवस्था (Formal Operationl Stage) (11 वर्ष की आयु से ऊपर)

इस अवस्था के दौरान बच्चों में अमूर्त संक्रियाओं का विकास होता है तथा वे बहुत्सी क्रियाओं का प्रयोग एक ही समय पर कर पाते हैं। यह आवश्यक नहीं कि बच्चा जिस स्थिति के बारे में सोच रहा हो उस स्थिति का पूर्व में कभी अनुभव भी किया हो। वह मात्र कल्पना द्वारा ही स्थिति को समझ पाता है। उदाहरण के लिए यदि सभी किसानों ने खेती करना छोड़ दिया हो तो क्या होगा? इस अवस्था में आकर बच्चे में परिकल्पना आधारित (Hypothetical) निगमनात्मक तार्किक चिंतन का विकास होता है। यह समस्या समाधान की एक विधि है जिसमें बच्चा समस्या के सभी कारकों की पहचान करता है| तत्पश्चात निगमन विधि का प्रयोग कर प्रत्येक समाधान का विश्लेषण करता है। इस अवस्था में वे आगमन विधि का प्रयोग भी कर पाते हैं जिसमें पहले विशिष्ट स्थितियों का अवलोकन किया जाता है और फिर सामान्य निष्कर्ष तथा सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है।

बच्चे यह समझ पाते हैं कि सभी लोगों के अलग-अलग विचार, दृष्टिकोण, भाव तथा प्राथमिकताएँ होती हैं। वे अपने विचारों को दूसरों की तुलना में आंकने लगते हैं। इस अवस्था केबच्चे वैज्ञानिक कल्पना के उपन्यासों में भी रुचि लेने लगते हैं। बच्चे सभी विकल्पों में से आदर्श विकल्प का चुनाव निगमन विधि द्वारा कर पाते हैं। बच्चे समाज, राजनीति में रुचि लेने लगते हैं क्योंकि वे एक आदर्श समाज की कल्पना कर पाते हैं। खुद के भविष्य का चुनाव कर सकते हैं। पियाजे के अनुसार अधिकतर वयस्क कुछ क्षेत्रों में ही अमूर्त-संक्रियाएँ सोच पाते हैं जिनमें उनकी रुचि या अनुभव होता है। यह जरुरी नहीं कि वे हर क्षेत्र में अमूर्त रूप से सोच पाए। यह भी एक विवाद (Debate) का विषय है कि क्या सभी बच्चे अमूर्त संक्रियात्मक अवस्था तक पहुँच पाते हैं? पहली तीन अवस्थाएँ प्रत्यक्ष रुप से उपस्थित होने के कारण सभी बच्चों में समान पाई जाती हैं। परंतु चौथी अवस्था आगमन-निगमन विधि तथा अमूर्त संक्रियाओं पर आधारित होने के कारण प्रत्यक्ष रुप से उपस्थित और अवलोक्य नहीं होती है। अतः यह कहना उचित नहीं कि अपने जीवन में सभी व्यक्ति पियाजे के संज्ञानात्मक विकास की अंतिम अवस्था तक पहुँच पाते हैं।

अपनी प्रगति की जाँच २

पियाजे द्वारा प्रस्तुत संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं के बारे में चर्चा कीजिए |

.....

.....

पियाजे के सिद्धांत की सीमाएँ

(१) अवस्थाओं के कारण- पियाजे द्वारा दी गई चार अवस्थाओं को अक्सर कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। कई शोधकर्ताओं का मानना है कि यदि विकास एक सतत प्रक्रिया है तो अवस्थाएँ अलग-अलग क्यों ? क्या एक बच्चा एक समय में पूर्णतः एक ही अवस्था में होता है या वह एक समय में अलग-अलग अवस्थाओं की विशेषताएँ लिए होता है ? उदाहरण के लिए:- यदि बच्चा पूर्व संक्रियात्मक अवस्था में खुद कार्य कर पाता है तथा मूर्त संक्रियात्मक अवस्था के कुछ कार्य भी कर पाता है। तो ऐसे में हम बच्चे को किस अवस्था में कहेंगे?

(२) सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष की उपेक्षा - पियाजे के संज्ञानात्मक विकास में समाज की भूमिका को नजरअंदाज किया गया है। बच्चे का विकास पियाजे के अनुसार गुणमुक्त रूप में हो रहा है परंतु कुछ समाज मेंबच्चे कई कार्य बाकी समाजों की अपेक्षा जल्दी कर पाते हैं। उदाहरण के लिए:- बर्फीली जगहों पर रहने वाले बच्चे अलग-अलग प्रकार की बर्फ में अंतर कर पाते हैं जबकि मैदानी क्षेत्रों में रहने वाले बच्चे वह सब नहीं कर पाते हैं।

(३) बच्चों की क्षमता को नजर-अंदाज करना - कई शोध यह दर्शाते हैं कि बहुत छोटे बच्चे भी पियाजे द्वारा दिए द्वारा कई कार्यों को हल कर पाते हैं जिन्हें पियाजे के अनुसार बड़े बच्चे भी हल नहीं कर पाते।

२.२.३ पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत के शिक्षाशास्त्रीय प्रभाव

(१) खोजकर सीखना (Discover Learning)- पियाजे के अनुसार, बच्चों को खुद सीखने के लिए प्रेरित करना चाहिए। शिक्षक का कार्य यह नहीं कि वह पके-पकाए ज्ञान को बच्चों के समक्ष परोस दें, अपितु शिक्षकों को ऐसी गतिविधियों की रचना करनी चाहिए जहाँ बच्चे स्वयं क्रिया करके सीख सकें। शिक्षक को केवल सीखने का सामान उपलब्ध कराना चाहिए तथा एक सुगमकर्ता की भूमिका अदा करनी चाहिए।

(२) सीखने का सही समय (Readiness to Learn) -पियाजे के अनुसार शिक्षक को ऐसी गतिविधियों की रचना करनी चाहिए जिनसे बच्चों के मौजूदा ज्ञान में वृद्धि हो और बच्चों के वातावरण को समझने के सीमित दायरे का विस्तार हो। बच्चों की रुचि ना होने पर मानसिक रूप से उन पर नए ज्ञान को थोपना नहीं चाहिए।

(३) हर बच्चे की विशिष्टता को स्वीकारना - पियाजे के अनुसार हर बच्चा विकास की समान प्रक्रिया से गुजरता है परंतु अलग-अलग रफ्तार से। कुछ बच्चे कुछ कार्य जल्दी सीख जाते हैं, तो कुछ देर से। अतः शिक्षक को चाहिए कि वह हर बच्चे के लिए अलग से पाठ-योजना तैयार करे या छोटे-छोटे समूहों के लिए न कि पूरी कक्षा के लिए एक ही पाठ योजना बनाए। साथ ही यह भी आवश्यक है कि बच्चे के ज्ञान का मूल्यांकन उस बच्चे के पिछले ज्ञान से किया जाए, न कि अन्य बच्चों के कार्य से।

अपनी प्रगति की जाँच ३

पियाजे के सिद्धांत की शिक्षा क्षेत्र में उपयोगिता स्पष्ट कीजिए |

.....

.....

२.२.४ वायगाँत्सकी का सिद्धांत

अभी हमने पियाजे के संज्ञानात्मक विकास में यह पाया कि बच्चों में संज्ञानात्मक विकास विभिन्न अवस्थाओं से होते हुए किस प्रकार घटित होता है इस सिद्धान्त की मूल मान्यता यह है कि अपनी संज्ञानात्मक विकास की अवस्था के अनुसार ही कोई विद्यार्थी सीखता है। जरा सोचिए कि क्या ऐसा सम्भव है कि सीखना पहले हो और विकास उसका अनुसरण करे? आइए अब विचार करते हैं कि किस प्रकार से यह सम्भव हो सकता है इसके लिए हम वायगाँत्सकी के सिद्धान्त का अध्ययन करेंगें। लेव सेमेनोविच वायगाँत्सकी (1896-1934) बाल-विकास के क्षेत्र में अपने सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण के प्रतिपादन और विकास के लिए जाने जाते हैं। उनके अनुसार विकास बच्चे तथा उनके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की परस्पर अन्तःक्रिया से घटित होता है। बच्चे का सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष उसके संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करते हैं।

लेव वायगाँत्सकी एक रूसी मनोवैज्ञानिक थे। उनका देहान्त केवल 38 बर्ष की आयु में ही हो गया था परंतु इतने छोटे जीवनकाल में भी उन्होंने 100 से अधिक पुस्तकें तथा शोधपत्र लिखे। वे स्वयं एक शिक्षक थे | इन्होंने अपने शिक्षण में सुधार के लिए अधिगम तथा विकास के विषय में गहन अध्ययन प्रारंभ किया। उन्होंने भाषा, कला, अधिगम और विकास तथा विशिष्ट बच्चों की शिक्षा आदि के विषय में शोध किया और लिखा। वायगाँत्सकी के विचार उस समय तथा आज भी क्रांतिकारी हैं। उनके विचार शिक्षा तथा मनोविज्ञान दोनों ही क्षेत्रों में बड़े उपयोगी हैं। वायगाँत्सकी के अनुसार मानव की गतिविधियाँ सामाजिक-सांकृतिक दायरे में होती हैं। सामाजिक गतिविधियों के दौरान विद्यार्थी सक्रिय सहभागिता करता है। इस सहभागिता द्वारा उसकी मानसिक संरचनाओं तथा प्रक्रियाओं का विकास होता है। बालक में सामाजिक एवम् सांस्कृतिक विकास के दो स्तर होते हैं। पहले स्तर में बच्चा दूसरे बड़े व्यक्ति के साथ मिलकर किसी समस्या को सुलझाना सीखता है। दूसरे स्तर में, वह समस्या समाधान या सोचने की प्रक्रिया को आत्मसात् कर लेता है जिससे वह बालक के संज्ञानात्मक विकास का एक हिस्सा बन जाती हैं। वायगाँत्सकी के अनुसार, बालक के संज्ञानात्मक विकास में सांस्कृतिक उपकरणों (Cultural tools) की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण होती है। कुछ सांस्कृतिक उपकरणों के उदाहरण इस प्रकार हैं| भाषा, संख्या,कम्प्यूटर आदि। इनके द्वारा ही बालक वार्तालाप सोचना,समस्या का समाधान तथा नए ज्ञान का सृजन कर पाता है।

वायगॉत्सकी ने संज्ञानात्मक विकास में भाषा की भूमिका को विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना है। अक्सर हमने छोटे बच्चों को कोई भी कार्य करते हुए खुद से बात करते हुए देखा है। दरअसल इस दौरान वह अपने कार्य के लिए स्वयं कोदिशा - निर्देश दे रहे होते हैं। इसे आत्मकेंद्रित संवाद (Ego centric speech) कहते हैं। इस तरह के आत्मकेंद्रित संवाद द्वारा बच्चा स्वनियमन (Self regulation) विकसित कर पाता है। धीरे-धीरे जब बच्चे बड़े होने लगते हैं,तो खुद से जोर-जोर से बात करना, अपने में अंदर ही अंदर बिना होंठ हिलाए बात करने में सक्षम हो जाता हैं। अब बच्चे केवल शब्दों के बारे में सोचकर ही अपने कार्यों को पूरा कर पाते हैं जिसे आंतरिक वाक् (Inner speech) कहते हैं।

वायगॉत्सकी का मानना था कि संज्ञानात्मक विकास में अक्सर ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जहाँ बच्चे समस्या का समाधान करने के कगार पर होते हैं, परंतु उन्हें किसी के दिशा- निर्देशन किसी भी रूप में हो सकते हैं जैसे- तरीका बताना, कोई संकेत या कार्य में लगे रहने के लिए प्रेरणा आदि। संज्ञानात्मक विकास का वह दायरा जिसमें बच्चा उचित दिशा- निर्देशन तथा मार्गदर्शन से कार्य को पूरा कर पाता है,समीपस्थ विकास का क्षेत्र (Zone of Proximal Development ZPD) कहते हैं। दुसरे शब्दों में बच्चे के वर्तमान विकास स्तर (जहाँ वह स्वतंत्र रूप से समस्याओं का समाधान कर पाता है तथा जहाँ बच्चे किसी के दिशा-निर्देशन तथा सहायता से विकास के नए स्तर तक पहुँच पाता है), इन दोनों के बीच के क्षेत्र को समीपस्थ विकास का क्षेत्र कहते हैं। यह दिशा-निर्देशन तथा सहायता किसी बड़े वयस्क या किसी योग्य सहपाठी द्वारा भी मिल सकती है। समीपस्थ विकास के क्षेत्र का स्तर प्रायः बदलता रहता है क्योंकि बच्चे तथा अन्य व्यक्ति (कोई बड़ा या योग्य सहपाठी) के बीच ज्ञान का स्थानांतरण लगातार होता रहता है। बड़ों तथा योग्य सहपाठी द्वारा दिए गए मार्गदर्शन को ठाठ या स्कैफोल्डिंग (Scaffolding) कहते हैं। यह मार्गदर्शन धीरेधीरे कम तथा अन्ततः समाप्त हो जाता है जब बच्चा स्वयं समस्या का समाधान ढूँढ़ पाने के काबिल हो जाता है। उदाहरण के लिए, जब बच्चा जूते पहनना सीखते हैं तो बड़े परिवार के या प्रौढ़ सदस्य उन्हें यह प्रक्रिया छोटे-छोटे हिस्सों में समझाते हैं। जैसे- दायें- बायें पांव के जूते की पहचान करना, फिर उसमें पैर डालना, फिर फीते से एक गांठ लगाकर जूते को बांधना आदि । शुरु में बड़े लोग आसपास नहीं होते तो बच्चे स्वंय ही खुद से जोर-जोर से बात करते हुए खुद को निर्देश देते हैं। जैसे- अमीना कहती है - राइट जूता कौन सा है.... (दाएं पैर का जूता पकड़कर)... हाँ। ये। इसमें डालों। अब लेफ्ट (बायां जूता उठाकर)-----।

इसी प्रकार बच्चे खुद को कार्यों को करने के निर्देश देने लगते हैं। बड़ों द्वारा दिए गए निर्देश भी धीरे-धीरे कम होते रहते हैं। बच्चे भी धीरे-धीरे खुद को निर्देश के लिए कुछ शब्द या कुछ संकेतों का प्रयोग करते हैं। बाद में वह उस प्रक्रिया को आत्मसात् कर लेते हैं। आत्मसात् करने के बाद यह प्रक्रिया उनके आंतरिक संवाद का हिस्सा बन जाती है।

वायगॉत्सकी के सिद्धान्त की सीमाएँ -

वायगॉत्सकी ने संज्ञानात्मक विकास में समाज तथा संस्कृति की भूमिका को महत्व दिया है। परंतु वायगॉत्सकी के कार्य में इस सवाल का जवाब मिलना मुश्किल है कि वह कौन-सी संज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिसके कारण बच्चा समाज की गतिविधियों में स्वतंत्र रूप से भाग ले पाता है? वायगॉत्सकी के सिद्धांत में अधिकतर केवल सैद्धातिक संकल्पनाएँ होती हैं। वायगॉत्सकी का ३२ वर्षो की अल्पायु में देहांत हो गया। और वे अपने विचारों को आगे नहीं ले जा सके| हालांकि उनके सिंद्धातों पर उनके विद्यार्थियों ने शोध कर अध्ययन किया। वायगॉत्स्की के सिद्धांत की उपयोगिताएँ उनके अनुयायियों ने ही प्रस्तुत की हैं, जो कि आवश्यक नहीं कि वायगॉत्स्की का भी तात्पर्य रहा हो।

वायगॉत्सकी तथा शिक्षा -

सहपाठियों तथा बड़ों का योगदान - वायगॉत्सकी के अनुसार, बालक अकेले ही ज्ञान का निर्माण करना नहीं सीखता अपितु अपने सहपाठियों तथा बड़ों के मार्गदर्शन से सीखता है जिसे स्कैफोल्डिंग (scaffolding) कहते हैं।

वायगॉत्सकी ने सहकारी ढंग से सीखने (Co-operative learning) को भी बढ़ावा दिया जहाँ बच्चों का एक छोटा समूह एक निश्चित उद्देश्य के लिए मिलकर कार्य करता है। वायगॉत्स्की के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त से पारस्परिक शिक्षण (Reciprocal Teaching) को भी बढ़ावा मिला। जहाँ शिक्षक तथा 2-4 विद्यार्थी एक समूह में बैठकर बारी-बारी से पठन करते हैं इस दौरान वे 4 संज्ञानात्मक तरीकों का प्रयोग करते हैं- सवाल करना,सारांश बताना, समझाना, अनुमान लगाना। सीखने के दौरान, शिक्षक को बालक का मार्गदर्शन करना चाहिए। जैसे कार्य शुरू करते समय ताकि बालक धीरे-धीरे उस कार्य को स्वतंत्र रूप से कर सके। इसे ही सहायक सीखना (Assisted learning) कहते हैं।

अपनी प्रगति की जाँच ४

वायगॉत्सकी के सिद्धांत की सीमाएँ बताएं|

बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में परिवार, शिक्षक तथा जन-संचार की भूमिका

बच्चे के संज्ञानात्मक विकास में केवल बच्चा ही नहीं है अपितु उसका संदर्भ भी एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अतः हम कह सकते हैं कि बच्चे के संज्ञानात्मक विकास में सामाजिक संदर्भ में बालक के करीबी और प्रत्यक्ष- जैसे परिवार, शिक्षक आदि से लेकर सांस्कृतिक नियमों, न्यायपालिका जैसे अप्रत्यक्ष संस्थाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसे समझने के लिए यूरी ब्रोनफेनब्रेनर के जैव-पारिस्थितिक मॉडल का सिद्धांत मदद करता है। इसके अनुसार, एक बच्चे (या व्यक्ति विशेष) को कई प्रकार के सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारक प्रभावित करते हैं जो पारिस्थितिकी (ब्वदसवहलद्ध का निर्माण करते हैं| इन सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों में सबसे पहले सूक्ष्मतंत्र (Microsystem) आता हैं। सूक्ष्मतंत्र (Microsystem)के अंतर्गत बच्चे के आसपास के करीबी लोग आते हैं जैसे परिवार, शिक्षक आदि। ये सभी बालक को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं तथा बालक उन्हें प्रभावित करते हैं। अगले तंत्र में मध्यवर्तीतंत्र (Mesosystem) आता है, इसमें परिवार, शिक्षक तथा अन्य इकाइयाँ आपस में क्रिया करती हैं जिसका असर बालक पर पड़ता है। हालांकि इन इकाइयों की आपसी प्रक्रिया में बच्चा कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। इन परस्पर क्रियाओं में परिवार के लोग आपस में शिक्षक को प्रभावित करते हैं, शिक्षक परिवार के लोगों को तथा यह सभी बालक को प्रभावित करते हैं। बर्हितंत्र (Exosystem) के अंतर्गत वह सामाजिक कारक आते हैं,जिनका बच्चे पर अप्रत्यक्ष रूप से असर पड़ता है। जैसे शिक्षक का विद्यालय के प्रशासन से संबंध, माता-पिता की व्यवस्था,उनकी आय आदि। अंत में (Macrosystem) आते हैं जिसके अंतर्गत सभी बर्हितंत्र (Exosystem) आते हैं। ये सभी तंत्र आपस में परस्पर क्रिया करते हैं। Macrosystem (समष्टि ढाँचे) के अंतर्गत समाज के मूल्य, नियम, कायदे-कानून, रीति- रिवाज आदि। ब्रोनफेनबेनर के पारिस्थितिक मॉडल से पता चलता है कि परिवार का बच्चे के विकास में महत्वपूर्ण और प्रत्यक्ष योगदान है। आइए परिवार के इन्हीं महत्वपूर्ण पहलुओं पर विचार करें |

परिवार

जन्म के उपरांत शिशु का सबसे पहला परिचय माता-पिता या परिवार से होता है। इस संदर्भ में तीन कारक महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं: बच्चे के साथ माता-पिता के संबंध को बनाने की शैली, सहोदर भाई-बहनों की संख्या, परिवार का प्रकार और परिवार के सदस्यों के साथ शिशु का संबंध संयुक्त परिवार में शिशु का विकास खास तौर पर दादा-दादी की उपस्थिति में होता है जबकि एकाकी परिवार की स्थिति भिन्न होती है।

पालन शैली

सभी मानवीय संबंधों में बच्चे और माता-पिता के बीच का संबंध अनोखा होता है। ऐसे संबंधों में माता-पिता की विशेष भूमिका होती है क्योंकि शिशु अपने जीवन के लिए माता-पिता पर पूर्ण रूप से निर्भर करता है। बच्चे का परिवेश, उसके माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्य मिलकर जो वातावरण बनाते हैं, उससे निर्मित होता है। अपने बच्चे के साथ पालन शैली का तात्पर्य उस पद्धति से है जिससे माता-पिता तथा अन्य सदस्य उसकी देखभाल करते हैं, और उसके साथ अंतः क्रिया करते हैं। यह सभी क्षेत्रों में बच्चे की बुद्धि एवं विकास को प्रभावित करता है। माता-पिता अपने बच्चों के विकास के परिवेश को किस तरह गढ़ते हैं, यह बहुत सीमा तक पालन-शैली (या बच्चों की देखभाल की प्रक्रिया) पर निर्भर करता है। आप दो परिवारों के बीच, दो भिन्न-भिन्न समुदायों के बीच तथा दो भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के बीच बच्चों के लालन-पालन की प्रक्रिया में अंतर पाएंगे। कारण यह है कि विभिन्न संदर्भों में बच्चों से क्या व्यवहार अपेक्षित है यह अलग-अलग होता है। उदाहरण के लिए पश्चिमी (यूरोपीय) समाज में बच्चों में अधिकांशतः स्वतंत्रता, स्वायत्तता और खुली अभिव्यक्ति के विकास पर बल दिया जाता है दूसरी ओर भारतीय समाज में आज्ञापालन, दूसरों की देखभाल तथा परिवार या समाज के लिए अपनी निजी इच्छाओं और रुचियों के त्याग पर बल दिया जाता है।

क्रियाकलाप
बच्चों के साथ माता-पिता की अंतःक्रिया आप अपने पड़ोस के पाँच परिवारों को लें तथा एक सप्ताह तक जिस प्रकार वे अपने बच्चों से अंतःक्रिया करते हैं, उसे ध्यान से देखें। माता-पिता बच्चों के साथ किस तरह अंतः क्रिया करते हैं,इसे नोट करें। अंतःक्रिया के स्वरूपों का विश्लेषण करें तथा अपने सहपाठियों तथा शिक्षकों के साथ अपने प्रेक्षण पर विचार विमर्श करें।

माता-पिता अपने अनुशासन लागू करने के तरीके से एक-दूसरे से अलग हो सकते हैं, प्रोत्साहन एवं दंड के लिए उचित व्यवहार के चयन में अपनी शिक्षण शैली (जैसे-किसी विशेष कार्य को करने हेतु बच्चों को आदेश देना या उसके समर्थन में तर्क रखना),तथा बच्चों के प्रति स्नेह प्रदर्शन इत्यादि में भी भिन्नता पाई जाती है। अध्ययनों से निम्नांकित चार तरह की मुख्य पालन शैलियों का परिचय मिलता है|

सत्तावादी-निरंकुश (Authoritarian & Autocratic) - इस शैली में, माता-पिता अपने बच्चों पर कड़ा नियंत्रण रखते हैं तथा बच्चों को अपने विचारों को स्वतंत्रतापूर्वक या खुलकर व्यक्त करने की अनुमति नहीं होती। बच्चों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी इच्छाओं को प्रकट न करें। यहां माता-पिता का अधिकार और अनुशासन ही सर्वोच्च होता है। जब बच्चे अपने पालनकर्ता या अभिभावक के विचारों से विमुख होते हैं तब उन्हें कड़ी सजा (यहाँ तक कि शारीरिक दंड) दी जाती है। इस शैली द्वारा जिन बच्चों का पालन-पोषण होता है उनमें सामाजिक योग्यताओं की कमी होती है। ऐसे बच्चों में समस्याओं से पीछे हटने की प्रवृत्ति, सामाजिक पहल लेने का अभाव तथा सहजता की कमी होती है। वे सदैव अपने निर्णय लेने के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं कि कौन-सा व्यवहार उचित है? ऐसे बच्चों में सामान्यतः बौद्धिक निष्पादन के लिए प्रेरणा की कमी होती है।

उदार-अनुज्ञापक (Indulgent-Permissive) - इस शैली को अपनाने वाले माता-पिता सहनशील तथा धैर्य की प्रवृत्ति वाले होते हैं बच्चों को दंड नहीं देते, आधिकारिक व्यवहार अथवा विचारों को नहीं थोपते, बच्चों पर परिपक्व व्यवहार के लिए दबाव नहीं डालते तथा बच्चों को निर्णय लेने की छूट देते हैं। पालन की इस शैली के कई नकारात्मक परिणाम होते हैं। ऐसे बच्चे आक्रामक, स्वतंत्र निर्णय लेने में अक्षम तथा उत्तरदायित्वों से दूर भागने वाले होते हैं।

आधिकारिक-पारस्परिक(Authoritative & Reciprocal) - इस शैली में पालन प्रक्रिया की दोनों शैलियों के अवयवों को अपनाया जाता है। वे व्यवहार के स्पष्ट मानक तय करते हैं और उन्हें लागू करने के लिए बच्चों पर आवश्यकतानुसार अंकुश लगाते हैं। साथ ही माता-पिता अपने बच्चों में स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता को बढ़ावा देते हैं। उन बच्चों से किसी समस्यामूलक विषय पर खुलकर विचार-विमर्श करते हैं तथा सहमति की ओर आगे बढ़ते हैं। इस शैली में माता-पिता तथा बच्चों, दोनों के अधिकारों को स्वीकार किया जाता है। यह पालन शैली बच्चों के संज्ञानात्मक विकास और क्रियाशीलता दोनों को बढ़ावा देती है। साथ ही सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाने तथा आक्रामकता को नियंत्रित करने की क्षमता, आत्मविश्वास तथा अपने प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण, स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय लेने की क्षमता आदि को विकसित करने में मदद करती है।

तटस्थ-असम्बन्ध (Indifferent-Uninovolved) - कुछ माता-पिता अपने आप को माता-पिता की भूमिका में स्वीकार ही नहीं करते। वे अपने बच्चों के प्रति कठोर, असहयोगी तथा नकारात्मक या उपेक्षात्मक दृष्टिकोण रखते हैं| माता-पिता के बीच भी संवाद प्रायः कम ही होता है। माता-पिता द्वारा प्रयुक्त इस शैली में बच्चों का क्किास सीमित होता है। माता-पिता के ये व्यवहार बच्चों को सामाजिक रूप से स्वच्छंद और आक्रामक बना देते हैं। अतः माता-पिता के द्वारा अपनायी गई पालन-पोषण की शैली बच्चों के सामान्य तथा सांवेगिक विकास को विशेष रूप से प्रभावित करती है।

बच्चों के सहोदर भाई या बहन भी उसके विकास को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सहोदर भाई या बहन बच्चे की समस्याओं को समझने में सक्षम होते हैं तथा माता-पिता की अपेक्षा वे शिशु के साथ संवाद करने में अधिक सहमत होते हैं। अग्रज सहोदर भाई-बहन उचित देखभाल करने वाले की भूमिका में भी होते हैं। जन्म लेने वाला प्रथम शिशु, अपने माता-पिता के विशेष ध्यान का पात्र होता है तथा उस शिशु (बालक या बालिका) से माता-पिता को ऊँची अपेक्षा रहती है। माता-पिता उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा करते हैं और उच्च उपलब्धि के लिए उस पर ज्यादा दबाव डालते हैं। बड़े सहोदर भाई या बहन से यह अपेक्षा की जाती है कि अपने से छोटे सहोदर भाई या बहन के साथ संयमित व्यवहार तथा उत्तरदायित्वपूर्ण संवाद बनाएँ। सामान्यतः पाया गया है कि जन्म क्रम में पहले और बाद वाले बच्चों की विशेषताएं भिन्न-भिन्न होती हैं। अपने छोटे सहोदर भाई या बहन की अपेक्षा पहले जन्म लेने वाला सहोदर (अग्रज सहोदर) संयमी, सहयोगी, परिपक्व, चिंतित तथा सामाजिक मानकों का पालन करने वाला होता है।

मित्र मंडली,खेल तथा जनसंचार माध्यम

मित्र मंडली - मित्र मंडली (Peer Group) बच्चे के विकास को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। मित्र मंडली का तात्पर्य समान आयु वर्ग या परिपक्वता स्तर के (हमउम्र) व्यक्तियों से है। मित्र मंडली परिवार से बाहर की दुनिया में तुलना एवं सूचना व्यवस्था के स्रोत के रूप में कार्य करती है। बच्चे भी अपने समान आयु के लोगों से अपनी सामाजिक तथा बौद्धिक योग्यताओं (क्षमताओं) के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। वे एक मानक की तरह कार्य करते हैं, जिससे बच्चे आपसी क्रियाकलाप की तुलना करते हैं। बड़े होने पर बच्चे मित्र मंडली के साथ अधिकाधिक समय बिताना पसंद करते हैं। सामाजिक एकाकीपन अनेक समस्यात्मक व्यवहारों को जन्म देता है। ऐसे बच्चे विद्यालय से भागने से लेकर विभिन्न अपराधों तक में शामिल होते हैं। मित्र मंडली का आपसी संबंध चार प्रकार का हो सकता है-

लोकप्रिय बच्चे- ऐसे बच्चे मित्र मंडली द्वारा बहुत पसंद किए जाते हैं तथा प्रायः अच्छे दोस्त के रूप में पहचाने जाते हैं। उनमें उच्च मात्रा में सकारात्मक व्यवहार तथा निम्न मात्रा में नकारात्मक व्यवहार देखने को मिलता है।

औसत बच्चे- ये बच्चे अक्सर समान उम्र के लोगों द्वारा पसंद किए जाते हैं तथा साधारणतः अच्छे दोस्त के रूप में नामित किए जाते हैं। उनका ऋणात्मक तथा धनात्मक व्यवहार साधारण स्तर का होता है।

अस्वीकृत बच्चे- ये अपने समान उम्र के बच्चों द्वारा सक्रिय रूप से नापसंद किए जाते हैं तथा अच्छे मित्र के रूप में अक्सर नामित नहीं किए जाते हैं। इन लोगों का ऋणात्मक एवं सकारात्मक व्यवहार निम्न स्तर का होता है।

विवादास्पद बच्चे- साधारणतः ऐसे बच्चे समान उम्र के बच्चों द्वारा नापसंद किए जाते हैं लेकिन अक्सर मित्र के रूप में नामित किए जाते हैं। इनका ऋणात्मक एवं सकारात्मक दोनों ही तरह का व्यवहार उच्च मात्रा में होता है।

खेलः

बचपन में मित्र मंडली के बीच पारस्परिक अंतःक्रिया मुख्यतः खेल के माध्यम से जुड़ी होती है। खेल या क्रीड़ा एक आनंददायक कार्य है जिसमें जुड़ाव अपने लिए होता है। यह एक छोटे बच्चे के स्वास्थ्य के विकास के लिए आवश्यक है। खेल मित्र मंडली के सदस्यों के बीच जुड़ाव, तनाव से मुक्ति, प्रौढ़ संज्ञानात्मक विकास तथा खोजबीन की प्रवृत्ति को प्रोत्सहित करता है। खेल इस संभावना को बढ़ाता है कि बच्चे एक-दूसरे के साथ परस्पर अंतःक्रिया करेंगे। खेल अतिरिक्त शारीरिक ऊर्जा तथा तनाव से बच्चे को मुक्त करता है।

जनसंचार माध्यमः

पिछले 40-50 वर्षों में बच्चों तथा किशोरों के जीवन में मीडिया ने क्रांतिकारी बदलाव ला दिया है। अखबार,पत्रिका, रेडियो, टेलीविजन, कम्प्यूटर तथा मोबाइल अधिकतर मध्यमवर्गीय परिवारों में मौजूद हैं। किशोर अपनी उम्र के बाकी किशोरों से जुड़ने के लिए मोबाइल का खूब उपयोग कर रहे हैं। इसी तरह टी. वी. हर घर में अपनी जगह बना चुका है। हालांकि कई शोध टी. वी के कारण बढ़े रहे दुष्प्रभावों को उजागर करते हैं जैसे बच्चों की पढ़ने की क्षमता और सृजनात्मक क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव, गुस्से का बढ़ना,सामाजिक समूहों का कम होना आदि। आजकल विद्यालयों में भी स्मार्ट कक्षाओं का प्रयोग किया जा रहा है। परंतु टी. वी. का सिर्फ नकारात्मक प्रभाव ही नहीं है । यदि टी. वी कार्यक्रम दिखाए जाएँ जिनमें बड़ों का भी सहयोग हो, तो बच्चे को सीखनें में टी.वी. एक सुदृढ़ और प्रभावकारी माध्यम सिद्ध हो सकता है| टी. वी के माध्यम से संज्ञानात्मक भावनात्मक तथा सामाजिक विकास होता है। जन-संचार के कुछ सकारात्मक प्रभाव इस प्रकार हैं-

1) जन-संचार माध्यमों द्वारा बच्चों की जिज्ञासा शांत होती है। वे अपने आस-पास हो रही घटनाओं को समझ पाते हैं तथा उनमें जिज्ञासाओं का प्रसार होता है।

2) जन-संचार के माध्यम में भाषा के ही अलग-अलग रूपों का प्रयोग होता है जिससे बालक अवगत होता है तथा उसकी भाषा का दायरा विस्तृत होता है।

3) बैन्डूरा (Bandura) के अनुसार,बच्चा अवलोकन द्वारा सीखता है। टी. वी पर दिखाए गए कार्यक्रमों को दोहराकर बच्चे नई-नई बातें सीखते हैं। जन-संचार माध्यमों द्वारा बच्चे की सृजनात्मकता बढ़ती है तथा समस्या समाधान की प्रवृत्ति का विकास होता है।

इन सकारात्मक पक्षों के साथ ही मीडिया बच्चों के पढ़ने का समय घटा कर, उन्हें निष्क्रिय बनाकर, हिंसा का मॉडल उपलब्ध करा कर तथा संसार का एक अवास्तविक रूप उपलब्ध कराने की भूमिका निभाता है।

शिक्षक - बच्चे के विकास में समाज के प्रौढ़ लोगों का विशेष योगदान होता है जैसे- माता-पिता, दादी-दादा, शिक्षक आदि। परिवार के बाद यदि कोई वयस्क बच्चे के जीवन में अहम भूमिका निभाता है तो वह है-शिक्षक। अपने दिन के कई घंटे बच्चे अपने शिक्षक की छत्र-छाया में रहता है। शिक्षक, बच्चे के सामाजिक तथा व्यक्तिगत विकास में एक अहम कड़ी होता है। जिन बच्चों को घर में भावनात्मक समर्थन नहीं मिल पाता तथा कई व्यक्तिगत समस्याएँ आती है ऐसे बच्चों के लिए शिक्षक एक मार्गदर्शक की भूमिका अदा करता है | शिक्षक बच्चे को सही दिशा में कार्य करने हेतु अग्रसर करता है। उन बच्चों के लिए जिन्हें स्कूल में सहपाठियों के दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ता है, शिक्षक कक्षा में एक सौहार्दपूर्ण तथा स्नेहपूर्ण वातावरण बनाकर उन्हें प्रेरित करता है। शिक्षक बच्चों की व्यक्तिगत समस्याओं को सुनकर उनकी मदद भी कर सकते हैं। एक अच्छे शिक्षक को कक्षा के हर बच्चे के साथ एक सकारात्मक तथा सौहार्दपूर्ण व्यवहार रखना चाहिए। शिक्षक को सदैव एक प्रेरक के रूप में कार्य करना चाहिए। शिक्षण की पद्धति को रोचक तथा सृजनात्मक बनाना चाहिए ताकि बालक कुछ उपयोगी सीख सकें। शिक्षक को बालकों के लिए उचित लक्ष्य रखने चाहिए ताकि बच्चे उन्हें पूर्ण कर सकें। परंतु यह लक्ष्य उनके वर्तमान ज्ञान में वृद्धि करने वाला होना चाहिए। बच्चों को उस लक्ष्य तक पहुँचने में उनकी सहायता करनी चाहिए तथा उन्हें प्रेरणा देनी चाहिए। शिक्षक को संयमी, अच्छा श्रोता, प्रेरणा दायक, मृदुभाषी तथा आदरणीय होना चाहिए। शिक्षक को अपने जीवन को आदर्शपूर्ण रखना चाहिए ताकि बालक उनकी उपस्थिति से ही बहुत कुछ सीख सकें।

आपने संज्ञानात्मक विकास के बारे में पियाजे तथा वायगॉत्सकी के विचारों के बारे में पढ़ा। पियाजे के अनुसार बच्चों की चिंतन प्रक्रिया प्रौढ़ों से गुणात्मक रूप से भिन्न होती है। बच्चे अपनी समझ को समावेशन तथा समायोजन की प्रक्रियाओं द्वारा सक्रिय रूप से गढ़ते हैं। संज्ञानात्मक विकास चार अपरिवर्तनीय चरणों के क्रम में होता है। सांवेदिकपेशीय चरण में बच्चे वस्तु-स्थायित्व तथा कार्यो को विपरीत क्रम में करने की योग्यता विकसित कर लेते हैं। पूर्व-संक्रियात्मक चरण में प्रतीकात्मक चिंतन, आत्मकेंद्रिता तथा संधारण की क्षमता का अभाव पाया जाता है। मूर्त संक्रियात्मक चरण में बच्चे संधारण, विपरीत दिशा में चिंतन, वर्गीकरण तथा क्रम में व्यवस्थित करने की क्षमताएँ प्रदर्शित करते हैं|

परंतु उनका सोचना उनके तात्कालिक वातावरण में विद्यमान वस्तुओं के साथ जुड़ा रहता है। प्रौढ़ों में पाया जाने वाला चिंतन तथा तर्क, जिसमें अमूर्त संप्रत्ययों का उपयोग किया जाता है, औपचारिक संक्रियात्मक चरण में ही प्राप्त होता है। वायगॉत्सकी ने सामाजिक वातावरण के विभिन्न पक्षों जैसे-परिवार, समुदाय, मित्र तथा विद्यालय की, बच्चों के विकास में भूमिका पर बल दिया है। उन्होंने बच्चे के निष्पादन में व्यक्त क्षमताओं के मापन की जगह उनकी प्रच्छन्न क्षमताओं (ZPD) के मूल्यांकन पर बल दिया।

भाषा विकास

अपने विचारों को दूसरे तक पहुँचाने अथवा अभिव्यक्त करने का एकमात्र साधन है भाषा। वैसे विचार विनिमय के लिए भावमुद्राएं, संकेत अथवा भाषा का प्रयोग होता है। परन्तु भाव मुद्राओं तथा संकेतों का क्षेत्र अत्यंत सीमित होता है। परन्तु विचार विनिमय करने का सबसे सरल, सुगम व सर्वव्यापी साधन भाषा ही होती है| शब्दमयी भाषा ही व्यक्ति के मनोभावों को शीघ्रता और स्पष्टता के साथ संप्रेषित कर सकती है। सामान्यतः छः प्रकार की भाषाएं हो सकती है जिनमें में मातृभाषा, क्षेत्रीय भाषा, राष्ट्रभाषा,प्राचीन भाषा,विदेशी भाषा तथा अंतरराष्ट्रीय भाषा की गणना होती है। भाषा का अपना एक विशिष्ट क्षेत्र होता है जहां वह उपयोगी सिद्ध होती है।

भाषा विकास का अर्थ

भाषा विकास एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है जिसका स्वरूप काफी हद तक व्यक्ति की परिपक्वता से निर्धारित होता है। अतः भाषा विकास से तात्पर्य बालक की उस योग्यता से है जो बालक की परिपक्वता के अनुपात में भावों तथा विचारों को दूसरों तक पहुँचाने अथवा दूसरे के भावों तथा विचारों को ग्रहण करने में सहायक होता है।

भाषा विकास के सोपान

भाषा विकास की प्रक्रिया को दो सोपानों में विभक्त किया गया है-

1 पूर्व वाक् भाषा विकास अवस्था। 2 पश्च वाक् भाषा विकास अवस्था।

1 पूर्व वाक् भाषा विकास अवस्था

जन्म के बाद प्रथम महीने में होने वाली भाषा विकास की अवस्था को पूर्व वाक् भाषा विकास की अवस्था कहा जाता है। पूर्व वाक् भाषा विकास की अवस्था में बालक अपनी संचार आवश्यकताओं को चार तरह से अभिव्यक्त करता है-

1 रुदन - बच्चा रों कर अपनी जरूरतों, परेशानियों व इच्छाओं की जानकारी दूसरों को देता है।

2 बड़बड़ाना - पहले दो महीनों में शिशु रोने के अलावा कुछ अन्य अस्पष्ट ध्वनियां भी उत्पन्न करने लगता है| जब शिशु सात-आठ महीने का हो जाता है तब वह इन ध्वनियों को जान बूझकर बार-बार दुहराता है | बार बार ध्वनि होने के कारण ये ध्वनियां सुनने में अर्थपूर्ण लगने लगती है जैसे - मां मां , दा दा, ना ना आदि। इस प्रकार की अर्थपूर्ण प्रतीत होने वाली ध्वनियों को ही 'बड़बड़ाना' कहा जाता है।

3 हाव- भाव - शरीर के अंगों द्वारा की गई सार्थक क्रियाओं को हाव-भाव कहते है| इनके द्वारा शिशु स्वयं को अभिव्यक्त करने की कोशिश करता है। हाव-भाव भाषा का पूरक होता है।

4 सांवेगिक अभिव्यक्ति - शिशु अपने संवेगो को तरह-तरह से प्रदर्शित करता है जैसे- हाव भाव, रूदन, मुस्कुराना, खिलखिलाना, उछलना| वह सुखद और दुखद दोनों तरह के संवेगों को अभिव्यक्त करता है।

पश्च वाक् भाषा विकास -

लगभग पन्द्रह माह की आयु के उपरान्त दिखने वाली भाषा विकास की अवस्था को 'पश्च वाक् भाषा विकास की अवस्था' कहा जाता है। इस अवस्था मे बालक में सामान्यतया निम्न पांच प्रकार की सामर्थ्य विकसित हो जाती है-

1.भाषा अवबोध(Language Comprehension) - भाषा अवबोध से तात्पर्य शिशुओं द्वारा दूसरों की भाषा को समझने की योग्यता को अपने में विकसित करने से है। इसके लिए यह आवश्यक है कि बालक अपने परिवार के सदस्यों द्वारा प्रमुखता से बोले जाने वाले शब्दों तथा वाक्यों और उनके अभिप्रायों को ठीक तरह से समझ सकें।

2. शब्दावली निर्माण (Vocabulary Building) -पश्च-वाक् भाषा विकास का दूसरा सोपान बालक के द्वारा स्वयं की शब्दावली का निर्माण करना है। शब्दावली निर्माण की प्रक्रिया के दौरान बालक विभिन्न शब्दों तथा उनके अर्थों को समझता है। सामान्यतः बालक उसकी जैविक जरूरत से जुड़े शब्दों को पहले सीखता है। इसके बाद वह उसके परिवेश में प्रमुखता से बोले जाने वाले अन्य शब्दों को सीखता है तथा पुराने शब्दों के लिए नये अर्थ को ग्रहण करता है। धीरे-धीरे उसकी शब्दावली का आकार बढ़ता जाता है। साधारणतः एक वर्ष का बालक औसतन 10 शब्दों का प्रयोग करता है एवं डेढ़ वर्ष का बालक औसतन 30 शब्दों का प्रयोग करता है।

3. वाक्य संगठन (Sentence Organization) - शब्दों को मिलाकर वाक्य बनाना प्रारम्भ में बालकों के लिए एक कठिन कार्य होता है। लगभग दो वर्ष की आयु में बालक शब्दों की सहायता से वाक्य बनाने का प्रयास करने लगते है। ढाई-तीन वर्ष की आयु में बालक संज्ञाओं तथा क्रिया शब्दों को मिलाकर एक छोटा वाक्य बनाने का प्रयास करते हैं परन्तु प्रायः उनके छोटे वाक्य भी अपूर्ण होते हैं। जब बालक 5 साल का हो जाता है तो सभी शब्द भेदों को समझते हुए शब्दों को मिलाकर छोटे-छोटे वाक्यों को सही ढंग से बनाना व बोलना सीख जाता है।

4.सही उच्चारण (Proper Pronunciation) - पश्च-वाक् भाषा विकास के चौथे सोपान का सम्बन्ध शब्दों को सही ढंग से उच्चारण करना सीखने से है। शिशु परिजनों अथवा अन्य व्यक्तियों के अनुकरण (Imitation) द्वारा शब्दों का उच्चारण करना सीखता है।वह माता -पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों की भाषा को सुनता है तथा उसकी नकल करने की कोशिश करता है।

5.भाषा स्वामित्व (Language Mastery)- भाषा पर स्वामित्व पाना पश्च-वाक् भाषा विकास का अन्तिम सोपान कहा जा सकता है। इस सोपान मे बालक शब्दों एवं वाक्यों का सही-सही प्रयोग,व्याकरण तथा वाक्य विन्यास आदि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करता है| अपने शब्द भण्डार को विस्तृत व बौद्धिक स्वरूप देता है।

भाषा विकास का क्रम

1. ध्वनि की पहचान (Recognition of Sounds)- भाषा विकास का प्रथम सोपान विभिन्न ध्वनियों की पहचान करना होता है। शिशु प्रारम्भ में ध्वनियों को नहीं पहचान पाता है तथा न ही उनमें अन्तर कर पाता है। धीरे-धीरे वह ध्वनियों को पहचानने का प्रयास करता जाता है तथा लगभग 5-6 माह की आयु में ध्वनियों में भेद करना प्रारम्भ कर देता है।

2. ध्वनि उत्पन्न करना (Production of Sounds) - भाषा विकास के दूसरे क्रम में बालक ध्वनि को पहचान कर उसी प्रकार की अथवा उससे मिलती-जुलती कुछ अन्य ध्वनियों को उत्पन्न करना प्रारम्भ कर देता है।

3. शब्दों तथा वाक्यों की रचना (Production of words sentences):- ध्वनि पहचान व विभेद करने एवं ध्वनि उत्पन्न करने में समर्थ होने पर बालक ध्वनियों का सार्थक ढंग से उपयोग करके शब्दों व वाक्यों की रचना करने के क्रमागत सोपान पर आ जाता है। यह भाषा की मौखिक अभिव्यक्ति अर्जित करने का प्रथम चरण है।

4. लिखित भाषा का प्रयोग (Use of Written Language) -शब्दों व वाक्यों के रूप में मौखिक अभिव्यक्ति में कुछ योग्यता अर्जित करने के उपरान्त बालक भाषा के लिखित स्वरूप को अर्जित करने की दिशा में प्रगति करता है।

5. शब्दों के अनुप्रयोग में निपुणता लाना (Acquisition of Mastery in Application)- भाषा विकास की अन्तिम अवस्था में बालकों में भाषा के बोलने, पढ़ने तथा लिखने के कार्य में निपुणता विकसित होती है।

भाषा विकास को प्रभावित करने वाले कारक

1.स्वास्थ्य -बालकों का स्वास्थ्य उनके भाषा विकास को सार्थक ढंग से काफी प्रभावित करता है।यदि बालक प्रथम चार वर्ष में किसी गंभीर या लम्बी बीमारी से पीड़ित रहता है,तो उसकी ध्वनि पहचान,उच्चारण तथा शब्द भण्डार क्षमता अपनी आयु के सामान्य बालकों की अपेक्षा प्रायः कम विकसित हो पाती है।

2 बुद्धि -बालकों के बुद्धि स्तर का उनके भाषा विकास से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता हैं। जिन बालकों की बुद्धि लब्धि अधिक होती हैं, उनमें भाषा विकास तीव्र गति से होता हैं।

3.यौन भिन्नता - प्रारम्भिक वर्षों में शिशुओं के भाषा विकास में यौन भेद का स्पष्ट प्रभाव देखने को नहीं मिलता है। परन्तु दो-तीन वर्ष की आयु के उपरान्त यौन भेद का प्रभाव उनके भाषा विकास पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगता है।लड़कियों का भाषा विकास लड़कों की अपेक्षा तीव्र गति से होता है |

4.सामाजिक आर्थिक स्तर -प्रारम्भ के एक-दो वर्ष की आयु तक परिवार के सामाजिक -आर्थिक स्तर का प्रभाव बालकों के भाषा -विकास पर देखने को नहीं मिलता हैं। बाद में बालकों के भाषा -विकास पर परिवार के सामाजिक -आर्थिक स्तर का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगता है। उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर के परिवारों का माहौल भाषा-विकास की दृष्टि से अधिक उत्तेजक तथा आधुनिक सूचना सम्प्रेषण सामग्रियों और उपकरणों जैसे रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, कम्प्यूटर, समाचार-पत्र, पत्रिकाओं आदि से युक्त होता है। परिणामतः ऐसे परिवारों के बालकों में भाषा विकास की गति तीव्र होती है।

5.परिवार का आकार - प्रायः छोटे परिवार में बालकों का भाषा विकास तीव्र गति से होता है,जिस परिवार मे अनेक बच्चे होते हैं वहाँ के बच्चों का भाषा विकास कुछ धीमा-सा हो जाता है, परिवार मे कई बच्चों के होने से माता-पिता उन सभी बच्चों पर सही ढंग से ध्यान नहीं दे पाते हैं।

6.जन्मक्रम - बालकों के भाषा विकास पर बालकों के जन्मक्रम का भी प्रभाव पड़ता है। जन्मक्रम में प्रथम स्थान वाले बालकों का भाषा विकास बाद के जन्म क्रम वाले बालकों की तुलना में प्रायः तीव्र गति से होता है।

7.बहु जन्म- बहु जन्म से तात्पर्य जुड़वाँ तथा त्रिड़वा बच्चों के जन्म लेने से होता है। ऐसा पाया गया है कि चार-पाँच वर्ष की आयु तक जुड़वाँ तथा त्रिड़वा बालकों का वाक् विकास अकेले बालक की तुलना में कुछ मंद होता है।

8. बहु भाषावादी -यदि परिवार के सदस्य एक से अधिक भाषा बोलते हैं, तब किसी एक भाषा के विकास की गति व विकास कुछ-कुछ बाधित हो जाती है।

9. संगी -साथी -कुछ माता-पिता अपने बच्चों को उनके साथियों के साथ ज्यादा मिलने-जुलने नहीं देते हैं। जिसके कारण ऐसे बच्चों का सामाजिक सम्पर्क सीमित रह जाता है और उनके भाषा विकास की गति सामान्य से कम हो जाती है |

10.अभिभावक प्रेरणा -माता-पिता व परिजनों द्वारा बालकों को दी जाने वाली अभिप्रेरणा भी भाषा विकास को प्रभावित करती है।

भाषा विकास में बाधाएँ

1.विलम्बित भाषा - अनेक बालक-बालिकाओं का भाषा विकास उनकी आयु के अन्य बालकों की तुलना में देर से होता है। इसे विलम्बित भाषा कहते हैं।

2.वाक् विकार - भाषा विकास की प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के वाणी दोष (जैसे-तुतलाना,हकलाना)एक बड़ी चुनौती बनकर सामने आते हैं। दोषपूर्ण वाणी से तात्पर्य असंगत वाणी से होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि शब्दों के अनुचित उच्चारण से अथवा अनुपयुक्त वाक्य संरचना से अथवा शब्दों का गलत अर्थो मे प्रयोग करने से वाणी दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

3. उच्चारण विकार व स्वानिकी विकार- अस्पष्ट उच्चारण के अलावा हकलाना व तुतलाना भी वाणी दोष या भाषा विकृतियों के कारण होते हैं। स्पष्ट है कि भाषा विकार या वाणी विकार से तात्पर्य बोलने में होने वाली असामान्यताओं से होता है।

भाषा -विकास की प्रविधियाँ - बालकों के अन्दर उचित भाषा विकास के लिए निम्नांकित प्रविधियाँ प्रयुक्त की जा सकती है-

1.अनुकरण -बालकों द्वारा भाषा सीखने की सर्वाधिक प्रमुख प्रविधि अनुकरण करना है। वस्तुतः बालक परिवार के सदस्यों जैसे भाई-बहन, माता-पिता,चाचा-चाची,दादी-दादा तथा साथियों को जैसा बोलते हुए सुनता हैवैसा ही बोलने का प्रयास करता है।इसे अनुकरण कहा जाता है|

2. खेल क्रियाएँ - बालक अपने प्राक्-विद्यालयी अवस्था तथा विद्यालयी अवस्था में अपने साथियों के साथ तरह -तरह के खेल खेलते हैं। इस प्रकार के खेलों के दौरान बालक द्वारा टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों को खींचना तथा खेल की सामग्रियों द्वारा अक्षर बनाना जैसी बातें भी सम्मिलित रहती है जो उनके अन्दर भाषा ज्ञान को विकसित करती है|

3.कहानी सुनना -प्राचीन भारतीय परम्परा में दादा-दादी,चाचा-चाची, माता-पिता तथा अन्य समकक्षी वयस्क व्यक्ति बच्चों को कहानियाँ व कवितायें सुनाते हैं।

4.वार्तालाप- अपने संगी -साथियों तथा परिवार के सदस्यों के साथ बातचीत व वार्तालाप करके भी बच्चे भाषा की बारीकियाँ सीखते हैं।

5.प्रश्नोत्तर- बालक स्वभाव से ही जिज्ञासु होते हैं। अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिए बालक घर में परिवार के सदस्यों तथा स्कूल में शिक्षकों तथा खेल के मैदान में साथियों से तरह-तरह के प्रश्न किया करते हैं। इन प्रश्नों तथा उनके उत्तरों द्वारा वे शब्दों का सही अर्थ समझते हैं।

6.पढ़ना व लिखना-पढ़ने तथा लिखने के कार्य भी भाषा विकास की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं।

भाषा विकास में शिक्षा का योगदान

अ) अनौपचारिक शिक्षा (Informal Education)

1.बालकों के भाषा विकास को उन्नत बनाने में माता-पिता व अन्य परिजनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

2.भाषा विकास में पारिवारिक वातावरण का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

3.बच्चों में भाषा विकास के लिए श्रवण संवेदना का विकसित होना आवश्यक है।

4.बच्चे अन्य व्यक्तियों के शब्दों को जिस ढ़ंग से बोलते हुए या प्रयुक्त करते हुए सुनते हैं वे अनुकरण द्वारा उन्शब्दों को उसी ढंग से बोलना व प्रयोग करना सीख लेते हैं।

5.भाषा विकास में बच्चों के साथ होने वाली बातचीत भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

6.भाषा विकास में बच्चों को सुनाई कहानियों तथा गीतों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहता है।

7.माता-पिता को अपने बच्चों को पुस्तकों,समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं आदि को पढ़ने के समुचित अवसर देने चाहिए।

8.माता-पिता को बच्चों को पर्याप्त बोलने व सुनने के भी अवसर देने चाहिए।

9.भाषा विकास में खेल की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है।खेल के मैदान में बालकों को तरह-तरह के नए-नए शब्दों को सुनने का अवसर मिलता है।

10.बच्चों के समुचित भाषा विकास के लिए माता-पिता को उन्हें दोषपूर्ण पारिवारिक वातावरण से यथासम्भव अलग-थलग रखना चाहिए एवं बालक में किसी प्रकार का वाणी दोष होने पर उसे दूर करने का तत्काल प्रयास करना चाहिए।

ब) औपचारिक शिक्षा –(Formal Education)

भाषा विकास की प्रक्रिया में औपचारिक शिक्षा का भी महत्वपूर्ण स्थान रहता है।

1.बच्चे जिस रूप में शब्दों का उच्चारण सुनते हैं,उसी रूप में उनका उच्चारण करना सीख लेते हैं एवं शिक्षक उसके अनुकरणीय व्यक्ति होते हैं।

2. कक्षा में शिक्षकों को शिक्षार्थियों के बीच पाये जाने वाले वैयक्तिक विभेदों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

3. रुचि के अभाव में प्रायः शिक्षार्थी न तो अपनी शिक्षा की ओर न ही भाषा विकास की ओर आवश्यक ध्यान दे पाते हैं| फलतः वे नए-नए शब्दों को सीखने के अवसरों का लाभ नहीं उठा पाते हैं।

4. विद्यालय में शिक्षार्थियों को आवश्यकतानुसार कहानी,कविता व एकांकी आदि सुनाने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

5.विद्यालय में वाद-विवाद की व्यवस्था करके छात्रों को बोलने के पर्याप्त अवसर भी दिये जाने चाहिए।

6.बच्चे खेलकूद के माध्यम से नये-नये शब्दों को शीघ्रता व सहजता से सीख लेते हैं। इसके अलावा खेल के मैदान में तथा खेल प्रतियोगिताओं के दौरान शिक्षार्थियों को बोलने व स्वयं को अभिव्यक्ती करने के भी अवसर मिलते हैं।

क) गैर-औपचारिक शिक्षा(Non Formal Education)

बालकों के भाषा विकास मे संचार उपक्रमों तथा सामाजिक व धार्मिक समस्याओं आदि की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है

1.बच्चे रेडियो.टी.वी व अन्य श्रव्य साधनों से शब्दों को जिस ढंग से बोलते हुए सुनते हैं,वे उसी का अनुकरण करने लगते हैं तथा उसी ढंग से उच्चारण करना,शब्दों का प्रयोग करना तथा वाक्य संरचना करना सीख लेते हैं।

2. श्रवण संवेदना का अधिकतम विकास करके ही बच्चों में अनुकूलतम भाषा विकास को प्रशस्त किया जा सकता है।

3.बच्चों द्वारा धार्मिक ग्रंथों का सुस्वर वाचन भी उनके भाषा विकास को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

4. सामाजिक संगठनों के द्वारा किये जाने वाले आयोजन भी प्रकारान्तर से बच्चों के भाषा विकास को प्रभावित करते है।

२.३ सारांश

आपने संज्ञानात्मक विकास के बारे में पियाजे तथा वायगॉत्स्की के विचारों के बारे में पढ़ा। पियाजे के अनुसार बच्चों की चिंतन-प्रक्रिया प्रौढ़ों से गुणात्मक रूप से भिन्न होती है। बच्चे अपनी समझ को समावेशन तथा समायोजन की प्रक्रियाओं द्वारा सक्रिय रूप से गढ़ते हैं। संज्ञानात्मक विकास चार अपरिवर्तनीय चरणों के क्रम में होता है। सांवेदिक-पेशीय चरण में बच्चे वस्तु-स्थायित्व तथा कार्यो को विपरीत क्रम में करने की योग्यता विकसित कर लेते हैं। पूर्व-संक्रियात्मक चरण में प्रतीकात्मक चिंतन, आत्मकेंद्रितता तथा संधारण की क्षमता का अभाव पाया जाता है। मूर्त संक्रियात्मक चरण में बच्चे संधारण, विपरीत दिशा में चिंतन, वर्गीकरण तथा क्रम में व्यवस्थित करने की क्षमताएँ प्रदर्शित करते हैं,परंतु उनका सोचना उनके तात्कालिक वातावरण में विद्यमान वस्तुओं के साथ जुड़ा रहता है। प्रौढ़ों में पाया जाने वाला चिंतन तथा तर्क जिसमें अमूर्त संप्रत्ययों का उपयोग किया जाता है, वह औपचारिक संक्रियात्मक चरण में प्राप्त होता है। वायगॉत्सकी ने सामाजिक वातावरण के विभिन्न पक्षों जैसे-परिवार, समुदाय, मित्र तथा विद्यालय की बच्चों के विकास में भूमिका पर बल दिया। उन्होंने बच्चे के निष्पादन में व्यक्त क्षमताओं के मापन की जगह उनकी प्रच्छन्न क्षमताओं (ZPD) के मूल्यांकन पर बल दिया|

२.४ अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

अपनी प्रगति की जाँच १ उत्तर -अध्याय २.२.१ देखें |
अपनी प्रगति की जाँच २ उत्तर -अध्याय २.२.२ देखें |
अपनी प्रगति की जाँच ३ उत्तर - अध्याय २.२.३ देखें |
अपनी प्रगति की जाँच ४ उत्तर - अध्याय २.२.४ देखें |

२.५ शब्दावली

1 संज्ञान - इस का अर्थ उन आन्तरिक मानसिक प्रक्रियाओं तथा उत्पादों से है जिनसे ज्ञान का निर्माण होता है।

2 पियाजे- पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त बाल विकास के क्षेत्र में अपने योगदान के लिए प्रसिद्ध है।स्विटजरलैंड निवासी जीन पियाजे (1896.1980द्ध ने प्राणी-विज्ञान में अपनी शिक्षा प्राप्त की। पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत में उनकी प्रारंभिक शिक्षा, जीव विज्ञान का बहुत अधिक प्रभाव दिखता है। इन के अनुसार बच्चों की चिंतनप्रक्रिया प्रौढ़ों से गुणात्मक रूप से भिन्न होती है। बच्चे अपनी समझ को समावेशन तथा समायोजन की प्रक्रियाओं द्वारा सक्रिय रूप से गढ़ते हैं।

3 वायगॉत्सकी - लेव वायगॉत्सकी एक रूसी मनोवैज्ञानिक थे। उनका देहान्त केवल 38 बर्ष की आयु में ही हो गया था परंतु इतने छोटे जीवनकाल में भी उन्होंने अनेक पुस्तकें तथा शोधपत्र लिखे। वे स्वयं एक शिक्षक थे और इन्होंने अपने शिक्षण में सुधार के लिए अधिगम तथा विकास के विषय में गहन अध्ययन प्रारंभ किया। इन्होंने सामाजिक वातावरण के विभिन्न पक्षों जैसे-परिवार, समुदाय, मित्र तथा विद्यालय की, बच्चों के विकास में भूमिका पर बल दिया। उन्होंने बच्चे के निष्पादन में व्यक्त क्षमताओं के मापन की जगह उनकी प्रच्छन्न क्षमताओं (च्द्ध के मूल्यांकन पर बल दिया|

२.६ कार्य आवंटन

१ संज्ञानात्मक विकास की प्रमुख विशेषताएँ बताइए|

२.७ क्रियाएँ

बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में शिक्षक,समाज और जनसंचार की भूमिका बताइए|

२.८ प्रकरण अध्ययन (केस स्टडी)

पियाजे और वायगॉत्सकी के सिद्धांत की चर्चा कीजिए |

२.९ सन्दर्भ पुस्तके

1)सिंह,अरुण कुमार,सिंह आशीष कुमार,व्यक्तित्व का मनोविज्ञान,मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन.दिल्ली,२०००.

2) पाठक,पी.डी.,शिक्षा मनोविज्ञान,आगरा :अग्रवाल पब्लीकेशन्स.

3) पाठक, आर.पी., उच्च शिक्षण मनोविज्ञान PEARSON पब्लीकेशन

4)गुप्ता एस.पी./गुप्ता अलका.,उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान,शारदा पुस्तक भवन,इलाहाबाद.

5) वालिया जे.एस,अधिगमकर्ता ,अधिगम एवं संज्ञान

6) अरुण कुमार सिंग,शिक्षा मनोविज्ञान

7) मंगल,एस.के.,शिक्षा मनोविज्ञान, दिल्ली,:पी.एच.आय.लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड,२०१५

8) Baron,Robert A.,Misra G.,Psychology,Pearson Publication,delhi 2014.

9) Bhatnagar S. and Saxena A.Advanced Educational Psychology .(2008)

10) Sharma R.A., Dubey Shri, Psychological Foundation of Education

इकाई :३ सामाजिक और नैतिक विकास

इकाई की संरचना

३.0 शिक्षण उद्देश्य

३.१ परिचय

३.२ विषय विवेचन

३.२.१ व्यक्ति और समाज

३.२.२ ब्रानफ्रेनब्रैनेर का मॉडल

३.२.३ स्व और पहचान

३.२.४ इरिक्सन का सिद्धांत

३.२.४ नैतिक विकास-कोह्लबर्ग का सिद्धांत

३.३ सारांश

३.४ अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

३.५ शब्दावली

३.६ कार्य आवंटन

३.७ क्रियाएँ

३.८ प्रकरण अध्ययन (केस स्टडी)

३.९ सन्दर्भ पुस्तकें

३.० शिक्षण उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप निम्नांकित को समझ पाएंगे-

१. व्यक्ति का सामाजिक और नैतिक विकास किस तरह होता है?

२. स्व और पहचान का विकास एवं आत्म-संप्रत्यय|

३. इरिक्सन और कोहलबर्ग के सिद्धांत |

३.१ इकाई परिचय

शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों में का सामाजिक, नैतिक एवं व्यक्तित्व विकास भी शामिल हैं| पिछले अध्यायों में आप विकास एवं वृद्धि तथा बच्चों में होने वाले संज्ञानात्मक विकास एवं उससे जुड़े सिद्धांतों के विषय में पढ़ चुके हैं| अब हम इस अध्याय में शिक्षार्थियों के सामाजिक एवं नैतिक विकास से सम्बंधित कारकों एवं सिद्धांतों पर विचार करेंगे|

३.२ विषय विवेचन

३.२.१ व्यक्ति और समाज

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है| उसका जन्म एक परिवार में होता है जो उसके प्राथमिक समाज का रूप लेता है| इसके बाद जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है उसके संपर्क में दूसरे व्यक्ति आते-जाते है और इन सबके फलस्वरूप उसका सामाजिक एवं व्यक्तित्व विकास होता है| सामाजिक विकास से तात्पर्य विकास की उस प्रक्रिया से है जिससे व्यक्ति अपने सामाजिक वातावरण के साथ अनुकूलन करता है,सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप अपनी आवश्यकताओं व रुचियों पर नियंत्रण करता है,दूसरों के प्रति अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करता है तथा अन्य व्यक्तियों के साथ प्रभावपूर्ण ढंग से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करता है| सामाजिक विकास के फलस्वरूप व्यक्ति समाज का एक मान्य,सहयोगी, उपयोगी तथा कुशल नागरिक बन जाता है| इस सन्दर्भ में हम अगले खंड में ब्रानफ्रेनब्रैनेर के पारिस्थितिक मॉडल (Bronfenbrenner's Ecological Model) पर प्रकाश डालेंगे |

३.२.२. ब्रानफ्रेनब्रैनेर का पारिस्थितिक मॉडल

यूरी ब्रानफ्रेनब्रैनेर(१९९४) द्वारा दिए गए पारिस्थितिक मॉडल में व्यक्ति को सामाजिक प्रक्रियाओं का केंद्र माना गया है| इस मॉडल के अनुसार कुछ परिस्थितिय संस्थाएँ /संरचनाएँ मनुष्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है और उसके सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती हैं जैसे-परिवार,मित्र, स्कूल, पड़ोंसी, जनसंचार आदि| ये सभी मिलकर 'सूक्ष्मतंत्र'(Microsystem) का निर्माण करते हैं| ये सभी संस्थाएँ न केवल व्यक्ति से परस्पर सम्बन्ध स्थापित करती हैं अपितु आपस में भी अंतर्क्रिया करती रहती हैं| आयु बढ़ने पर जब व्यक्ति का संज्ञानात्मक विकास होता है तथा उसका सामाजिक दायरा बढ़ता हैं,तब 'वृहद्तंत्र'(Macrosystem) के घटक जैसे लिंग, जाति, वर्ग, क्षेत्र, धर्म आदि सूक्ष्मतंत्र में समावेशित संस्थाओं एवं संरचनाओं द्वारा व्यक्ति के समाजीकरण अहम् भूमिका निभाते हैं|इसके अलावा 'बाह्यतंत्र'(Exosystem) के अवयव जैसे अर्थव्यवस्था (Economy), कानून एवं व्यवस्था (Law and order) ,नीति/नैतिकता (Ethics), संविधान (Constitution) आदि भी अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के सामाजिक विकास को प्रभावित करते हैं| अतः हमें इस मॉडल से यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति के परिवेश में उपस्थित विभिन्न घटक उसके सामाजिक विकास पर अलग-अलग तरीके से प्रभाव डालते हैं| इस खण्ड में हम इन कारकों पर विस्तार से चर्चा करेंगे|

३.२.३ सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

व्यक्ति के सामाजिक विकास में निम्नलिखित कारक अपनी भूम्मिका निभाते हैं -

१.आनुवांशिकी (Heredity)

वंशानुक्रम व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक विकास के साथ-साथ उसके सामाजिक विकास को भी प्रभावित करता है| अनेक सामाजिक गुण व्यक्ति को वंश परंपरा के रूप में अपने माता-पिता तथा अन्य पूर्वजों से प्राप्त होते हैं|

२.शारीरिक तथा मानसिक विकास (Physical and Mental Development)

शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ तथा विकसित मस्तिष्क वाले बच्चों के समाजीकरण की संभावनाएँ अधिक होती हैं| बीमार,अपंग तथा अल्प बुद्धि वाले बालक प्रायः सामाजिक अवहेलना सहते हैं जिसके फलस्वरूप उनमें हीनता की भावना विकसित हो जाती हैं और वे अन्य बच्चों के साथ स्वयं को समायोजित करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं|

३.संवेगात्मक विकास (Emotional Development)

जिन बच्चों में प्रेम, स्नेह, अनुराग, मित्रता, सहयोग, हास-परिहास के भाव अधिक होते हैं वे सभी को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं तथा स्नेह व आकर्षण का पात्र बन जाते हैं| इसके विपरीत जिन बच्चों में ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा, नीरसता आदि नकारात्मक भाव होते हैं,वे किसी को भी अच्छे नहीं लगते हैं तथा ऐसे बालकों की सभी उपेक्षा करते हैं|

४. परिवार (Family)

समाजीकरण का प्रारंभ परिवार से होता है| परिवार का वातावरण, संस्कृति, सदस्यों का आचरण, शिक्षा स्तर, आर्थिक स्तर, सहयोग, पालन पोषण आदि बच्चों के सामाजिक विकास को प्रभावित करते हैं| बच्चे अपने माता-पिता तथा परिवार के अन्यों सदस्यों के समान आचरण तथा व्यवहार करने का प्रयास करते हैं| खंडित परिवार या घरेलू हिंसा में पल-बढ़ रहे बच्चों का सामाजिक विकास प्रायः समुचित ढंग से नहीं होता है जिसके फलस्वरूप वह एकाकी महसूस करने लगते हैं और दूसरों के साथ परस्पर संबंध स्थापित करने में असमर्थ होते हैं|

५.समाज (Society)

सामाजिक व्यवस्था बच्चों के समाजीकरण को एक निश्चित दिशा प्रदान करती है| समाज के कार्य,आदर्श तथा प्रतिमान बच्चों के समाजीकरण की दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं| ग्रामीण व शहरी समाज में पल-बढ़ रहे बच्चों के सामाजिक व्यवहार में स्पष्ट अंतर देखा जा सकता है|

६.विद्यालय (School)

बच्चों के सामाजिक विकास में विद्यालय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान होता है| विद्यालय में बच्चे को अन्य बच्चों, तथा अध्यापकों से मिलने-जुलने व परस्पर सहयोग करने के तथा विभिन्न प्रकार की सामूहिक क्रियाओं में भाग लेने के अवसर मिलते हैं जो समाजीकरण की दिशा को निर्धारित करते हैं| इससे उसे परस्पर सामाजिक सम्बन्ध बनाने तथा सामाजिक अन्तर्क्रिया करने के प्रचुर अवसर प्राप्त होते हैं|

उपर्युक्त वर्णित कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य कारक भी बच्चों के सामाजिक विकास पर प्रभाव डालते हैं| जैसे-संस्कृति, राजनीतिक दल, साहित्य, धार्मिक संस्थाएँ तथा रेडियो व् दूरदर्शन आदि जनसंचार माध्यम भी बच्चों के सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं|

३.२.३ स्व और पहचान का विकास

स्व (self) का अर्थ एवं स्वरूप

मनोविज्ञान में 'स्व' पद को कई प्रकार से परिभाषित किया गया है। यह भी सत्य है कि इनमें से कोई भी परिभाषा पूर्णतः संतोषजनक नहीं है। मनोविज्ञान में 'स्व' की सबसे स्वीकृत परिभाषा फ्रायडियन मनोविज्ञान में व्यवहृत शब्द 'अहम्' से ली गयी है। इस अर्थ में 'अहम्' व्यक्तित्व का वह पहलू होता है जिसके कारण व्यक्ति अपनी पहचान स्थापित करते हुए वातावरण के अन्य सभी पहलुओं से भिन्न भी रहता है।

रोजर्स (1959) के अनुसार - "आत्मन् संगठित सतत संप्रत्यात्मक गेस्टाल्ट है जो 'मैं' या 'मुझे' की विशे षताओं के प्रत्यक्षण से बना होता है तथा जीवन के विभिन्न पहलुओं के संबंधों के प्रत्यक्षण एवं इन प्रत्यक्षणों के प्रति साथ जुड़े से बना होता है|"

बर्न्स (1980) के अनुसार " हमलोग अपने बारे में क्या सोचते हैं, दूसरे लोग हमारे बारे में क्या सोचते हैं तथा हम क्या होना चाहते हैं, की एक समग्र तस्वीर ही आत्मन् कहलाता है"

कोलहोन तथा एल्लोटेला (1978) के अनुसार " आपका आत्मसंप्रत्यय आपका मानसिक प्रारूप है। इसमें आपका अपने बारे में ज्ञान, आपकी प्रत्याशाएँ एवं ज्ञान सम्मिलित होते हैं|"

उक्त सभी परिभाषाओं से स्व के स्वरूप के बारे में निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होती है-

१. स्व का स्वरूप संगठित (organised) एवं सतत (consistent) होता है। इसका मतलब यह हुआ कि इससे व्यक्तित्व के प्रत्यक्षणों (perceptions) को इस तरह से संगठित किया जाता है कि उससे अपने बारे में व्यक्ति को एक यथार्थ तस्वीर प्राप्त हो ।

२. स्व में व्यक्ति को अपने बारे में एक संगठित प्रत्यक्षण होता है। दूसरे शब्दों में, इसमें व्यक्ति को यह पता होता है कि वह क्या है, उसमें कौन-कौन से गुण हैं, उसकी कौन-कौन-सी सीमाएँ हैं, उसकी आयु, यौन, राष्ट्रीयता, पेशा आदि क्या है ।

३. स्व में व्यक्ति को अपनी प्रत्याशाओं (expectation) के बारे में पता होता है। व्यक्ति को यह पता होता है कि वह क्या-क्या कर सकता है, उसे क्या-क्या करना चाहिए तथा उसे किस तरह व्यवहार करना चाहिए। आत्मन् के इस पहलू को रोजर्स ने आदर्श-आत्मन् (ideal self) कहा है जो फ्रायड द्वारा प्रतिपादित पराहं (super ego) संप्रत्यय के तुल्य है।

4. स्व (self) का एक पहलू यह भी होता है कि इसमें व्यक्ति अपना मूल्यांकन (evaluation) स्वयं करता है। जब व्यक्ति अपना मूल्यांकन करने के पश्चात स्वयं के विषय में कुछ अवाधारणाए या निर्णय लेता है,तो उसे 'आत्म-सम्मान' (self esteem) कहते हैं| यह मूल्यांकन जब धनात्मक (positive) होता है तो व्यक्ति में उच्च आत्म-सम्मान (High esteem) की भावना उभरती है और इसे 'सकारात्मक आत्मन' (positive self) कहा जाता है। इसके विपरीत कुछ बच्चों में नकारात्मक आत्मन् (Negative self) का विकास भी होता है|

अपनी प्रगति की जाँच १

आत्मन के अर्थ एवं स्वरुप के बारे में चर्चा कीजिए |

.....
.....
.....
.....

आत्मन् के विकास के निर्धारक (Determinants of development of 'self') -

पांच निम्नलिखित कारकों की पहचान की गयी है जिनसे आत्मन् का विकास प्रभावित होता है

(१) शरीरगठन एवं शारीरिक प्रतिमा (Physique and body image)

(2) भाषा (Language)

(३) पर्यावरण से मिलने वाला फीडबैक (Feed back from Environment)

(4) उपयुक्त यौन मॉडल के साथ तादात्म्य (Identification with appropriate sex model)

(5) पालन-पोषण की विधियाँ (Child rearing Practics)

इन पाँचों का संक्षिप्त वर्णन निम्नांकित है -

(१) शरीरगठन एवं शारीरिक प्रतिमा (Physique and body image)

आत्मन् के विकास में शरीरगठन एवं उसके बारे में बच्चों (या व्यक्तियों) के मन में निर्मित होने वाली तरह-तरह की प्रतिमाओं का प्रमुख स्थान होता है। कुछ बच्चों या व्यक्तियों का शारीरिक गठन कमजोर होता है और कुछ सीमित शारीरिक क्रियाएँ ही कर पाते हैं| दूसरी तरफ कुछ बच्चे या व्यक्ति ऐसे होते हैं जिनकी शारीरिक संरचना काफी मजबूत होती है तथा वे अपनी उम्र के अन्य बच्चों से शारीरिक ऊर्जा में आगे होते हैं। पहले वर्ग के बच्चों में एक तरह का नकारात्मक आत्मन् (Negative Self) विकसित होता है जबकि दूसरी श्रेणी के बच्चों में सकारात्मक आत्मन् (Positive Self) का विकास होता है।

(2) भाषा (Language)

'आत्मन्' के विकास पर भाषा का भी प्रभाव पड़ता है। बच्चे जब 'मैं', 'मुझको', 'उनका', 'मेरा' आदि शब्दों को बोलना सीख लेते हैं, तो स्पष्टतः उन्हें यह ज्ञान होने लगता है कि वे क्या हैं और वे अन्य लोगों से किस अर्थ में भिन्न हैं। इससे उनके 'आत्मन' का विकास तेजी से होने लगता है।ऑलपोर्ट (Allport) के अनुसार 2 से 3 साल की आयु में होने वाले आत्मन के विकास का भाषा से गहरा सम्बन्ध होता है|

(३) पर्यावरण से मिलने वाला पुनर्निवेशन (Feedback From Environment)

बच्चे परिवार के सदस्यों, शिक्षकों एवं साथियों से अन्तःक्रिया करते हैं। इस अन्तःक्रिया के आधार पर वे कुछ लोगों को महत्वपूर्ण एवं प्रभावी समझने लगते हैं क्योंकि ऐसे लोग उनकी नज़र में उन्हें सुरक्षा एवं प्यार देते हैं। जब बच्चों को ऐसे महत्वपूर्ण लोगों (Significant others) से उपेक्षा एवं तिरस्कार मिलता है, तो वे अपने को एक तुच्छ व्यक्ति समझने लगते हैं और उनमें आत्म-संप्रत्यय (Self Concept) का विकास हो जाता है जिससे उसकी समायोजनशीलता काफी प्रभावित होती है। आलपोर्ट (Allport,1965) ने ऐसे पुनर्निवेशन को आत्म-प्रतिमा (Self image) कहा है।

(4) उपर्युक्त यौन मॉडल के साथ तादात्म्य (Identification with appropriate sex model)

बच्चों में 6-7 साल की आयु होने पर उपयुक्त यौन के व्यक्तियों के साथ तादात्म्य स्थापित होता है। लड़कियाँ अपनी माताओं या अन्य महिलाओं के साथ तादात्म्य स्थापित करने की कोशिश करती हैं तथा लड़के पिता या अन्य पुरुषों के साथ तादात्म्य स्थापित करने की कोशिश करते हैं। इसका प्रभाव उनके आत्मन के विकास पर पड़ता है। हेथरिंगटन (1989) के अनुसार जब बच्चे उपर्युक्त यौन मॉडल के साथ तादात्म्य स्थापित करने में सफल हो जाते हैं, तो उनके आत्मन् में पुरुषत्व (Masculinity) तथा स्त्रीत्व (Feminity) का भाव विकसित हो जाता है। यह पहचान (Identity) के विकास में भी एक अहम भूमिका निभाता है|

(5) पालन- पोषण की विधियाँ (Methods of rearing)

स्व के विकास पर पालन-पोषण की विधियों का भी प्रभाव पड़ता है। बच्चों के पालन-पोषण की विधि विभिन्न समाजों में एक जैसी नहीं होती है फिर भी उनमें कुछ आयामों पर समानता देखी जा सकती है। स्पष्ट है कि स्व का विकास कई कारकों द्वारा निर्धारित होता है जिसमें सामान्य से विशिष्ट की ओर एक तरह की भिन्नता क्रमशः स्थापित होती जाती है।

अपनी प्रगति की जाँच २

स्व के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की चर्चा कीजिए |

.....

.....

३.२.४ इरिक्सन का मनो-सामाजिक विकास का सिद्धांत

इरिक इरिक्सन मूल रूप से एक अमेरिकी मनो-विश्लेषक थे। उनका जन्म 15 जून 1902 को फ्रैंक फर्ट, जर्मनी में हुआ था। वे उन लोकप्रिय मनोवैज्ञानिकों में से एक थे जिन्होंने विकास के महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली सिद्धांतो का प्रतिपादन किया। वर्ष 1994 में उनका निधन हो गया था। इरिक्सन का सिद्धांत मनो-विश्लेषक फ्रायड के काम से प्रभावित था। इनके सिद्धांत का मुख्य केंद्र मनो-सामाजिक विकास ही था।

मनो-सामाजिक विकास

इरिक्सन का यह मानना था कि व्यक्तित्व का विकास श्रृंखलाबद्ध चरणों में घटित होता है। इसीलिए इसे मानव-व्यक्तित्व के विकास का सिद्धांत भी कहा जाता है। यह सिद्धांत सम्पूर्ण जीवन-विस्तार में सामाजिक अनुभवों के प्रभावों पर ध्यान देता है जिनसे व्यक्तित्व का विकास संभव हो पाता है|

इरिक्सन का यह सिद्धांत व्यक्तित्व विकास के संदर्भ में शैशवावस्था से लेकर प्रौढ़ अवस्था तक बाह्य-कारकों, अभिभावकों और समाज के प्रभाव को स्पष्ट करता है। यह प्रभाव ही व्यक्ति के सामाजिक व्यक्तित्व का निर्माण करता है। उनका यह सिद्धांत विकास के आठ चरणों का उल्लेख करता है। प्रत्येक चरण में एक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मूल्य का संघर्ष महत्वपूर्ण है। साथ ही भावात्मक दायित्व के विकास में जो लक्ष्य विफल रहे हैं, उनका भी उल्लेख किया गया है। इरिक्सन के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति सम्पूर्ण जीवन काल में इन आठ चरणों की परस्पर श्रृंखला से गुजरता है।

एरिक्सन के मनो-सामाजिक विकास के सिद्धांत के आठ चरण इस प्रकार हैं

क्रम संख्या	आयु - वर्ग	मनो-सामाजिक चरणों में मूल्यों का व्दन्व्द
1	जन्म से 1 वर्ष तक	बुनियादी विश्वास बनाम अविश्वास (Basic Trust vs.Mistrust)
2.	एक से तीन वर्ष तक	स्वायत्तता बनाम लज्जा या संदेह (Autonomy vs.Shame)
3.	चार से पाँच वर्ष तक	पहल बनाम ग्लानि (Initiative vs.Guilt)
4.	छः से ग्यारह वर्ष तक	उद्योग बनाम हीनता (Industry vs.Inferitory)
5.	बारह से अट्ठारह वर्ष तक	पहचान बनाम भूमिका संशय (Identity vs.Role Confusion)
6.	उन्नीस से चालीस वर्ष तक	अंतरंगता बनाम अलगाव (Intimacy vs. Isolation)
7.	चालीस से पैसठ वर्ष तक	सर्जनात्मकता बनाम आत्म-समावेशन (Generativity vs.Self absorption)
8.	पैसठ से अधिक वर्ष तक	चारित्रिक अखंडता बनाम निराशा (Integrity vs.Despair)

जन्म से मृत्यु तक फैले इन आठ चरणों को सामान्य रूप में आयु वर्ग के आधार पर विभाजित किया गया है जिनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है|

चरण 1- बुनियादी विश्वास बनाम अविश्वास

इरिक्सन के मनो-सामाजिक विकास के सिद्धांत का पहला चरण जन्म से एक वर्ष की आयु तक विस्तृत है। यह जीवन का आरंभिक स्तर है। शिशु सम्पूर्ण रूप से अपनी देखभाल करने वाले व्यक्ति पर निर्भर होता है। देखभाल करने वाले व्यक्ति के प्रति विश्वास का भाव यही निर्भरता प्रदर्शित करती है। शिशु अपनी समस्त आवश्यकताओं के लिए इस पर निर्भर होता है| यदि माता-पिता और देखभालकर्ता (पालक) यह विश्वास बनाने में असफल होते हैं, तो बच्चे में अविश्वास की भावना प्रबल हो जाती है| इस स्तर पर जिन शिशुओं में विश्वास का विकास होता हैं, वे कुशल और सुरक्षित महसूस करते हैं और जिन में विश्वास का विकास नहीं हो पाता है, वे दुनिया को असंगत और अप्रत्याशित मानते है और अविश्वास का शिकार हो जाते हैं।

चरण 2 - स्वायत्तता बनाम लज्जा या संदेह

इरिक्सन के मनो-सामाजिक विकास के सिद्धांत का दूसरा चरण प्रारम्भिक शैशवावस्था के दौरान शुरू होता है| इस चरण में बच्चे कुछ सीमा तक आजादी पाना शुरु करते हैं। वे बुनियादी या आधारभूत कार्य स्वयं करने लगते हैं | वें अपने आसान निर्णय भी स्वयं लेने लगते हैं जैसे कि उन्हें क्या चाहिए आदि। बच्चों को चयन के अवसर प्रदान करके और नियंत्रण द्वारा अभिभावक और देखभालकर्ता उनमें स्वायत्तता की भावना का विकास करते हैं।

फ्रायड की तरह इरिक्सन का भी यह मानना है कि शौचालय प्रशिक्षण (Toilet training) इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह बच्चों में स्वतंत्रता की भावना को बढा देता है। हालांकि इरिक्सन का तर्क फ्रायड से काफी भिन्न था। बच्चे अपनी इच्छाओं को, क्या खाएँगे, किस खिलौने से खेलेंगे और कौन-से कपड़े पहनेंगे आदि को नियंत्रित करना शुरू करते हैं । जो बच्चे इस स्तर पर सफल होते हैं, वे आत्मविश्वास अर्जित करते हैं। जो सफल नहीं होते वे आत्म-संदेह और अपर्याप्तता की भावना से जूझते हैं। इरिक्सन का मानना है कि स्वायत्तता और संदेह के बीच संतुलन प्राप्त करना इच्छाशक्ति की तरफ बढ़ाता है यह भरोसा दिलाती है कि बच्चे स्वेच्छा से कारण और सीमाओं में रहते हुये कार्य कर सकतेहैं।

चरण 3 – पहल बनाम ग्लानि

विद्यालय पूर्व स्कूली वर्षों के दौरान बच्चे अपने अधिकारों का प्रयोग करना शुरु करते हैं। वे अपनी स्वतंत्रता का दायरा बनाते हैं कि दूसरों के साथ वे किस तरह खेलें और बातचीत करें। इस स्तर पर जो बच्चे सफल होते हैं, वे स्वयं को सक्षम और समर्थ महसूस करते हैं और नेतृत्व कौशलों को विकसित करते हैं। इसके विपरीत जो बच्चे सफल नहीं हो पाते, वे अपराधबोध, आत्मसंदेह और पहल की कमी की भावना से घिर जाते हैं। इस स्तर पर बच्चे अपने आस-पास के किशोरों व वयस्कों की नकल उतारने का प्रयास करते हैं और उसी अनुरूप वे अपने खेल की परिस्थितियों का निर्माण करते हैं। सबसे अधिक बच्चे दुनिया के बारें में "ऐसा क्यों हैं" के संदर्भ में जानने का प्रयास करते हैं। इस स्तर पर बच्चे के विकास में परिवार का मुख्य स्थान होता है।

चरण 4 – उद्योग बनाम हीनता

इस चरण में प्रारम्भिक स्कूली वर्षों में अध्ययनरत 5/6 साल की उम्र से लेकर 11/12 साल तक की उम्र के बच्चों को शामिल किया गया है। सामाजिक संबंध विकास की कुंजी हैं| जब बच्चे अपनी गरिमा का निर्माण अपने कार्यों के आधार पर करने लगते हैं तब उनमें 'वे क्या करते है' और 'क्या कर सकते हैं' की भावना का विकास होता है।

माता-पिता और शिक्षकों से मिली प्रशंसा से बच्चों का आत्मविश्वास बढ़ता है और वे अपनी कार्यक्षमता/कुशलता को दिखाने के दूसरे अवसर ढूंढते हैं| परन्तु यदि माता-पिता और शिक्षक यह विश्वास दिलाने में असफल होते हैं तो बच्चे यह सोचते हैं कि उनमें कार्य करने की कोई क्षमता नहीं है। इस स्तर पर विद्यालय और पास-पड़ोंस के साथ बच्चे का संबंध महत्वपूर्ण होता है।

चरण 5 - पहचान बनाम भूमिका संशय

किशोरावस्था के दौरान बच्चे अपनी स्वतंत्रता की खोज एवं 'पहचान' स्थापित करना शुरु करते हैं। इस स्तर पर बच्चों को आरम्भ से ही प्रोत्साहन और पुनर्बलन देना, उनकी स्वतन्त्रता और नियंत्रण की क्षमता को बढ़ाता है। जबकि जो बच्चे प्रोत्साहन और पुनर्बलन से वंचित रह जाते हैं, वे संवेगात्मक रूप से भ्रम और असुरक्षा की भावना में भटकते हैं।

एक किशोर अपनी पहचान की खोज की सतत यात्रा में लगा रहता है और इसके लिए सामाजिक पारस्परिक क्रियाओं का सहारा लेता है। साथ ही किशोरावस्था में सही एवं गलत से सम्बंधित निर्णय लेने की क्षमता का विकास भी होता है| जो व्यक्ति इस स्तर तक नहीं पहुँच पाते, वे भूमिका को लेकर संशय का अनुभव करते हैं।

चरण 6 - अंतरंगता बनाम अलगाव

इस चरण का आरंभ उत्तर किशोरावस्था में होती है, जब लोग व्यक्तिगत संबंधों की खोज में लगे होते हैं। इरिक्सन का मानना था कि अनिवार्य रूप से लोग दूसरों के साथ निकटता तथा वचनबद्ध रिश्तों का विकास करते हैं। जो इस स्तर पर सफल हो जाते हैं, वे वचनबद्ध और सुरक्षित रिश्तों का निर्माण कर पाते हैं | जो किशोर रिश्तों को स्थापित करने मे असफल रहते हैं, वे अकेलेपन और एकान्त के भाव से संघर्ष करते रहते है। इस स्तर पर लोगों को साथी, सहारे और प्यार की जरूरत होती है। कुछ अपना परिवार शुरू कर चुके होते हैं तथा कुछ उसकी तैयारी में लगे होते हैं। ऐसे में व्यक्ति को गहरी अंतरंगता और संतोषजनक सम्बधों की जरुरत होती है। यदि वे असफल होते हैं, तो उनमें समाज और परिवार के प्रति अलगाव पैदा होता है।

चरण 7 – उत्पादिता बनाम आत्म-आत्म-समावेशन और अवरोधन

प्रौढ़ावस्था के दौरान हम अपने जीवन के निर्माण में निरंतर लगे रहते हैं। अपने भविष्य और परिवार पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस स्तर पर कैरियर और काम सर्वाधिक महत्वपूर्ण सरोकार होता है। जो इस दौरान सफल होते हैं, वे सोचते हैं कि उन्होंने घर और समुदाय में रहते हुए सक्रिय रूप से दुनिया में सहयोग दिया। जो इस कौशल को पाने में असफल होते हैं, वे स्वयं को अवरोधक मानते हैं और सोचते हैं कि वे दुनिया का हिस्सा ही नहीं हैं। इस स्तर पर निष्क्रियता और अर्थहीनता दोनों ही सामान्य डर का रूप ले लेते हैं। जिससे जीवन में व्यापक बदलाव आते हैं|

चरण 8 – चारित्रिक अखंडता बनाम निराशा

एरिक्सन का मानना था कि जीवन की तैयारी प्रायः प्रौढ़ावस्था के लिए होती है और अंतिम स्तर उसके प्रतिबिंब को जीवन में शामिल करता है। वृद्धावस्था में कुछ लोग जब तटस्थता की भावना के साथ पीछे मुडकर देखते हैं तो उन्हें अपने अर्थपूर्ण जीवन और मूल्यवान योगदान का अहसास होता है। ऐसा करते हुए कुछ लोगों में निराशा की भावना आ जाती है| कुछ को लगता है कि उनका जीवन बर्बाद हो गया है और इसके लिए उन्हें पछतावे का अनुभव होता है। साथ ही, वे व्यक्तिगत कडवाहट और निराशा की भावनाओं से घिरे रहते हैं।

शिक्षकों के लिए इरिक्सन के मनो-सामाजिक विकास के सिद्धांत पर आधारित मार्गदर्शन

१. अध्यापक को शिक्षार्थियों के समक्ष ऐसा आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए जिससे उनमें अध्यापक प्रति विश्वास पैदा हो क्योंकि वे ही उनके प्रयासों की योजना और गतिविधियों को आगे ले जाने के लिए मुख्य भूमिका निभाते हैं|

२ शारीरिक, संज्ञानात्मक और सामाजिक कौशल विकास के लिए अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। शिक्षार्थियों में आत्म-अवधारणा और संतोष बनाए रखने के लिए कक्षा स्तर पर अवसर प्रदान करने होंगे ताकि मनोसामाजिक विकास समग्र रुप में हो सके।

३ बच्चों को करियर के विभिन्न विकल्पों और सामाजिक एवं राजनीतिक मान्यताओं व प्रणालियों के विभिन्न प्रकारों का पता लगाने के लिए अवसर प्रदान करने होंगे।

४ शिक्षकों को लगातार कक्षा की दिनचर्या और अभ्यासों को विकसित करने और निर्धारित करना चाहिए । इससे शिक्षार्थियों को यह महसूस होगा कि कक्षा एक सुरक्षित स्थान है, जहाँ वे अध्ययन कार्य कर सकते हैं और दोस्त भी बना सकते हैं।

५ शिक्षक को हमेशा शिक्षार्थियों के हित के लिए उनके प्रति वास्तविक चिंता दिखानी चाहिए और यह महसूस कराना चाहिए कि कक्षा एक सुरक्षित और स्नेहपूर्ण जगह है। कक्षा को शिक्षार्थियों के साथ मिलकर सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाना चाहिए।

६ शिक्षार्थी वर्ग को सबके सामने बोलने और बोर्ड पर लिखने के लिए अवसर देने चाहिए। साथ ही, शिक्षक को शिक्षार्थियों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना चाहिए| शिक्षार्थियों के साथ निरंतर संवाद करना चाहिए उनके मनोसामाजिक विकास के लिए आवश्यक है।

७ स्वयं -या खुद से कार्य करने वाले और जिम्मेदारी उठाने वाले बच्चों को प्रोत्साहित करना चाहिए, ताकि सामाजिक स्तर पर वे अपने उत्तरदायित्वों का ठीक से निर्वाह करने में सक्षम हो सकें। साथ ही, अध्ययन के दौरान उनमें उत्पन्न होने वाली हीनता और कमियों को भी दूर करना चाहिए। यह तभी संभव होगा जब उन्हें आत्म्मूल्यांकन के अवसर प्राप्त होंगे।

८ शिक्षार्थियों को खिलौने और अन्य वस्तुओं में अदला-बदली करने के अवसर दिये जाएँ, ताकि उन्हें आवश्यक पेशीय समन्वय विकसित करने का मौका मिले| इसके लिए उचित विकासात्मक पाठ्यक्रम का इस्तेमाल और उसे दिनचर्या में शामिल करना उपयोगी होगा।

९ माता-पिता और शिक्षकों को चाहिए कि वे किशोरों को विभिन्न नौकरियों का पता लगाने के अवसर प्रदान करें |

इरिक्सन के मनो-सामाजिक विकास के सिद्धांत की समीक्षा

१ यद्यपि इरिक्सन की कलात्मक शैली ने बहुत से लोगों को प्रभावित किया है, तथापि अस्पष्टता और आत्मीयता के लिए उसकी आलोचना भी की है। इरिक्सन स्वयं भी इस आलोचना की पुष्टि करते हैं कि उनको उनकी वैज्ञानिक प्रशिक्षण या पद्धति ने नहीं बल्कि कलात्मक भावना ने निर्देशित किया है।

२ इरिक्सन ने अपने सबसे महत्वपूर्ण अनुभवजन्य अनुसंधानों के आधार पर किशोरावस्था और पहचान को विस्तार देने के लिए अपने चारों ओर फैले विचारों को स्थापित करने का प्रयास किया है। किशोरावस्था के बारे में उनके सैद्धांतिक दृष्टिकोण का जेम्स ई मार्सिया ने अध्ययन किया और उसका समर्थन भी किया। मार्सिया के काम ने पहचान को विभिन्न रूपों में प्रतिष्ठित किया है और ऐसे अनुभवजन्य साक्ष्यों को प्रस्तुत किया है जो लोगों के सुसंगत आत्म्संप्रत्यय का किशोरावस्था में निर्माण करते है और प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था में अंतरंग संलग्नक को भी दर्शाते हैं। यह इरिक्सन के सिद्धांत का समर्थन करते हैं। साथ ही, सुझाव देते हैं कि जो प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था की कमियों को सुलझाने में लगे हैं, वे सफलतापूर्वक किशोरावस्था की कमियों व संकट को हल कर लेते हैं।

३ इरिक्सन के सिद्धांत पर प्रश्न उठाया गया कि क्या उनके सिद्धांत के चरण अनुक्रमिक हैं या केवल उनके द्वारा सुझाए आयु वर्ग के भीतर तक ही सीमित हैं। उदाहरण के लिए क्या एक व्यक्ति केवल किशोरावस्था के दौरान पहचान की खोज करता है या कर सकता है? इसके अलावा क्या दूसरे चरण की शुरुआत के पहले एक चरण का पूरा होना आवश्यक है? ऐसा जरूरी है क्या कि पहचान एवं अंतरंगता के चरण को प्राप्त करने से पहले उद्योग के चरण को पूरा कर लिया जाय आदि।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आलोचनाओं के बाद भी इरिक इरिक्सन का मनो-सामाजिक विकास का सिद्धांत सामाजिक संपर्क और व्यक्तित्व विकास को समझने में सहायक है। मनोविश्लेषक डेनिश का भी यही मानना है और वे इरिक्सन के सिद्धांत का समर्थन करते हैं। जन्म से एक बच्चा सुरक्षा की अपनी धारणा को अपनी संवेगात्मक पृष्ठभूमि के रूप में निर्मित करता है। खोजपूर्ण सहज ज्ञान को हासिल करने की लडाई में वह नए किस्म के डर का अनुभव करता है | वह जब खुद को सुरक्षित महसूस करता है तो विजेता बनता है। जो शिक्षक मनो-सामाजिक विकास की अवधारणा का उपयोग करना चाहते हैं, उसे कक्षा में सुरक्षित वातावरण का निर्माण करना होना ताकि प्रत्येक बच्चे को नए ज्ञान और रिश्तों की खोज करने में प्रोत्साहन मिले और सहजता महसूस हो।

अपनी प्रगति की जाँच ३

इरिक्सन के मनो-सामाजिक सिद्धांतो के कारकों के बारे में चर्चा कीजिए |

.....
.....
.....
.....

३.२.५ कोहलबर्ग का नैतिक विकास का सिद्धांत

लॉरेंस कोहलबर्ग, हार्वर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे। वह नैतिक निर्णय के विकास के क्षेत्र में अपने द्वारा किए 1970 के दशक के काम के लिए प्रसिद्ध हुए। उन्होंने एक विकासात्मक मनोवैज्ञानिक के रूप में शुरुआत की और फिर नैतिक शिक्षा के क्षेत्र की तरफ अग्रसर हुए। उन्हें विशेष रूप से उनके नैतिक विकास के सिद्धांत के लिए जाना जाता है, जिसे उन्होंने विभिन्न शोध अध्ययन के माध्यम से, हार्वर्ड के नैतिक शिक्षा के केंद्र में लोकप्रिय बनाया।

नैतिक विकास का उनका यह सिद्धान्त, स्विस मनोवैज्ञानिक जीन पियाजे और अमेरिकी दार्शनिक जॉन डीवी के विचारों से प्रभावित है। इन दोनों व्यक्तियों का मानना था कि एक प्रगतिशील फैशन में मनुष्य का विकास दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक प्रकार से होता है। कोहलबर्ग ने पियाजे के सिद्धांत को आगे बढ़ाया। उन्होंने बताया कि नैतिक विकास निरंतर चलने वाली एक प्रक्रिया है जो की जीवन भर घटित होती है।

"द हाइन्ज डिलेम्मा" (हाइन्ज की दुविधा)

कोहलबर्ग का सिद्धांत युवा बच्चों के समूह के साथ किए शोध और साक्षात्कार पर आधारित है। इन बच्चों के समक्ष नैतिक दुविधाओं की कुछ श्रेणियों को प्रस्तुत किया गया तथा उस पर उनके तर्क के पीछे के निर्णय को जानने के लिए साक्षात्कार भी लिया गया। नैतिक दुविधा के उदाहरणस्वरूप-

"यूरोप में एक महिला एक विशेष प्रकार के कैंसर की बीमारी से ग्रस्त होने के कारण मरणासन्न स्थिति में थी। चिकित्सकों के अनुसार वो केवल एक दवा से बच सकती थी जोकि उसी शहर के एक वैद्य ने बनाई थी। परंतु वह वैद्य दवा के मूल्य से दस गुना ज्यादा मूल्य में उसे बेच रहा था। उस बीमार महिला का पति हाइन्ज उस दवा की कीमत का आधा मूल्य ही जुटा पाया। उसने वैद्य से निवेदन किया की उसकी पत्नी मर जाएगी, इसलिए वह उसे कम कीमत में दवा दे दे। परंतु,वैद्य ने ऐसा करने से मना कर दिया। इसके बाद, हाइन्ज ने अपनी पत्नी के लिए वैद्य के स्टोर को तोड़कर उस दवा को चुरा लिया।"

कोहलबर्ग की दिलचस्पी ये जानने में नहीं थी, कि हाइन्ज गलत था या सही। बल्कि शोध में शामिल बच्चों के निर्णय के पीछे के तर्क को जानना था। इन्हीं प्रतिक्रियाओं को इस नैतिक विकास के सिद्धांत के चरणों मे विभाजित किया गया है।

कोहलबर्ग के नैतिक विकास के सिद्धांत के स्तर एवं चरण

कोहलबर्ग का मानना था कि व्यक्ति की प्रगति उसकी नैतिक तर्क की क्षमता में चरणों की एक शृंखला के माध्यम से संभव है। पियाजे ने नैतिक विकास के दो चरणों का वर्णन किया। जबकि, कोहलबर्ग के अनुसार छःचरण पहचाने गए, जिनको आम तौर पर तीन मुख्या स्तरों में वर्गीकृत किया गया। कोहलबर्ग के नैतिक विकास के सिद्धांत के चरणों को निम्नलिखित वर्गीकरण में रेखांकित किया जा सकता है-

स्तर	चरण	सामाजिक उन्मुखीकरण
पूर्व-पारंपरिक तर्क Pre-Conventional Reasoning	१	दंड तथा आज्ञा पालन अभिमुखता (Punishment and obedience Orientation) दंड से बचने लिए नियमों का पालन किया जाता है|
	२	यांत्रिक सापेक्षिक अभिमुखता (Instrumental Relativist Orientation) व्यक्तिगत आवश्यकताएँ एवं फायदे नियमों के पालन का आधार बनते हैं|
पारंपरिक नैतिक तर्क Conventional Moral Reasoning	३.	उत्तम लड़का -लड़की अभिमुखता (Good Boy-Nice Girl Orientation) "अच्छा लड़की-लड़का"की पहचान से युक्त होने के लिए निर्णय लेना| हम क्या कर रहे है, क्या चाहते हैं, दूसरों की मदद कैसे करते है इसका नैतिक तर्क इस आधार पर लेते हैं कि इस निर्णय को दूसरे कैसा मूल्य प्रदान करते है?
	४.	कानून और व्यवस्था (Law and Order Orientation) व्यक्ति विशेष की निर्धारित ड्यूटी करना,कानून का पालन करना और एक व्यवस्थित समाज को बनाए रखना ही सही है|
उत्तर-पारंपरिक नैतिक तर्क Post-Conventional Reasoning	5.	सामाजिक अनुबंध की अभिमुखता (Social Contract Orientation) वैयक्तिक अधिकारों के सामाजिक रूप से स्वीकृत मानकों पर आधारित निर्णय
	६.	सार्वभौमिक नैतिक्ता अभिमुखता सिद्धांत (Universal Ethical Principle Orientation) शायद ही कभी जीवन में सामना करना| व्यक्तिगत विवेक पर आधारित सही और गलत का निर्णय व्यक्ति के द्वारा निर्देशित न्याय और समानता जिसमें न्याय, मानव गौरव एवं समानता जैसे अमूर्त विचारों का समावेश होता है|

(क) पूर्व-पारंपरिक तर्क का स्तर

नैतिक सोच व विचार का पहला स्तर सामान्यतः प्राथमिक स्कूल स्तर पर विकसित होता है। इस स्तर में शामिल मुख्य बिन्दु हैं-

१. यह अहं-केन्द्रिता की नैतिकता पर आधारित है।

२. यह विशेषतया 10 साल की उम्र के बच्चों के बारे में है।

३. युवा बच्चों को वास्तव में दूसरोंद्वारा निर्धारित नियमों को समझने में असमर्थता होती है, इसीलिए इसे पूर्व-पारंपरिक कहा जाता है।

४. इस स्तर पर कार्य के परिणाम अच्छे या बुरे को निर्धारित करते है।

चरण 1 – दंड तथा आज्ञा पालन अभिमुखता (Punishment and Obidience Orientation)

इस चरण में, लोग सामाजिक रूप से स्वीकार्य नियमों के अनुरूप व्यवहार करते हैं, क्योंकि उन्हें कुछ प्राधिकारिक संरचनाओं (जैसे परिवार,विद्यालय,अभिभावक या शिक्षक) द्वारा ऐसा करने को कहा जाता है। इस तरह की आज्ञाकारिता के लिए कभी-कभी डर या दण्ड द्वारा उनको सीख दी जाती। यह नैतिकता दंड और पुरस्कार पर आधारित होती है। निर्णयों का निर्माण बाहरी व्यवस्थाओं के अनुसार होता है। उदाहरण के तौर पर, यदि हाइन्ज गलत था क्योंकि चोरी करते हुए पकड़े जाने पर दण्ड मिलता है\|

चरण 2 – यांत्रिक सापेक्षिक अभिमुखता (Instrument Relativist Orientation)

व्यवहार की सार्थकता स्व हित पर आधारित होती है| दूसरों की केवल इतनी ही मदद करें जोकि हमारे स्वयं के लिए भी लाभदायक हो। इस प्रकार, तर्क यह है कि कार्य तभी नैतिक होगा जब नियमों का पालन स्वयं के लिए कुछ सकारात्मक परिणाम लेकर आए। एक बच्चे का तर्क इस स्तर पर यह हो सकता है कि हाइन्ज दवा चुराना कर सही था यदि वह वैद्य के लिए लिखित संदेश छोंड़ता हो कि वह उसके समर्थन में कुछ अच्छा जरूर करेगा।

(ख) पारंपरिक नैतिक तर्क का स्तर

नैतिक सोच व विचार का दूसरा स्तर सामान्यतः समाज में पाया जाता है इसलिए इसका नाम पारंपरिक या परंपरागत है। इस स्तर पर शामिल मुख्य बिन्दु निम्नलिखित हैं-

१. इसमें दूसरों द्वारा निर्धारित नैतिकता पर जोर दिया गया है।

२. यह 10 से 20 साल तक की उम्र के दायरे में आने वालों के लिए है।

३. इसमें कानून, धर्म, समाज के नियमों और परंपराओं में निहित नैतिकता पर स्वयं के निर्णयों को आधारित किया जाता है।

चरण 3 – उत्तम लड़का-लड़की अभिमुखता

इस चरण में बच्चे बड़ों द्वारा स्वीकृति पाने के लिए लालयित रहते हैं| इस स्तर पर नैतिकता को अच्छे पारंपरिक संबंधों के संदर्भ में परिभाषित किया जाता है। सही व्यवहार दूसरों को प्रसन्न करता है। व्यवहार को इरादों से परखा जाता है, जो व्यक्ति विशेष के नैतिक मूल्यों को परिलक्षित करते हैं। एक बच्चे के तर्क के अनुसार हाइन्ज गलत था क्योंकि उसने दवा के लिए वैद्य की अनुमति नहीं ली थी। जबकि, दूसरे बच्चे का तर्क था कि वह सही था क्योंकि उसने पारिवारिक जिम्मेदारी को निभाते हुए अपनी मरती हुई पत्नी को बचाने के लिए दवा चुराई थी।

चरण 4 - कानून और व्यवस्था अभिमुखता

यह चरण कानून और कर्तव्य के दायित्वों पर बल देता है। नैतिकता का संबंध सभी की भलाई और सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के साथ है। उदाहरण के तौर पर, एक तर्क है कि हाइन्ज गलत था क्योंकि उसने चोरी की थी जोकि कानून के नियम के विरूद्ध किया गया कार्य था।

(ग) उत्तर -पारंपरिक नैतिक तर्क

नैतिक तर्क का तृतीय स्तर वह है, जहाँ तक कोहलबर्ग के अनुसार अधिकतर वयस्क नहीं पहुँच पाते हैं अर्थात् जिस स्तर को कोई भी शीघ्र अनुभव नहीं कर सकता है। इस स्तर में शामिल मुख्य बिन्दु हैं -

१. यह सिद्धांतों की नैतिकता पर जोर देता है।

२. 20 साल की उम्र से पहले शायद ही कोई इस स्तर पर पहुँचता है और केवल जनसंख्या का एक छोटा समूह ही इस स्तर तक पहुँच पाता है।

३. मानव जीवन को बचाना कानून के नियमों के पालन से ज्यादा मूल्यवान होता है।

चरण 5 - सामाजिक अनुबंध अभिमुखता

यह चरण सामाजिक पारंपरिकता की समझ और दूसरों के कल्याण में एक वास्तविक पक्ष को उजागर करता है। नैतिकता सामाजिक अनुबंध के साथ व्यक्तिगत और नैतिक अधिकार पर निर्भर करती है। इसी प्रकार सही व्यवहार व्यक्तिगत अधिकारों पर आधारित होता है, जो समाज द्वारा स्वीकृत किया जाता है। समाज को लाभ देने के लिए कानून को बदला जा सकता है। एक तर्क के अनुरूप, हाइन्ज सही था क्योंकि उसकी पत्नी का जिंदगी जीने का अधिकार अधिक महत्वपूर्ण था बजाय चोरी ना करने के कानून का पालन करने के।

चरण 6 - सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांत अभिमुखता (Universal Ethical Principle Orientation)

यह चरण सार्वभौमिक नैतिक सिद्धांतों के प्रति सम्मान और व्यक्तिगत अंतरात्मा की मांग पर आधारित है। इसमें व्यक्ति उचित-अनुचित का निर्णय ऐसे स्वनिर्धारित नैतिक सिद्धांतों के आधार पर करता हैजो तार्किक व्यापकता (Logical Comprehensiveness), सार्वभौमिकता (Universality) और एकरूपता (Consistancy) से युक्त होते हैं| हम नैतिक निर्णयों पर भी पहुंचते हैं जब इसमें शामिल लोगों के नजरिए को भी ग्रहण करते है। व्यक्ति विशेष का उचित व्यवहार व्यक्तिगत विवेक और उसके द्वारा चुने गए नैतिक सिद्धांतों पर आधारित होता है। ये न्याय के सर्वमान्य प्राकृतिक सिद्धांत होने के साथ-साथ मानव अधिकारों की समानता,परंपरागत तथा जाति के प्रति सम्मान की भावना से युक्त होते हैं |

कोहलबर्ग हमेशा चरण 6 के अस्तित्व में विश्वास करते थे और उनके पास इसके लिए कुछ प्रमाण भी थे।

कोहलबर्ग का मानना था कि व्यक्ति इन चरणों के माध्यम से क्रमशः प्रगति कर सकता है। वे चरणों को बीच में छोड़ नहीं सकते हैं। उनके अनुसार स्वार्थ के अभिविन्यास के लिए अच्छा लडका/लडकी चरण से गुजरे बिना कानून और व्यवस्था की अवस्था तक नहीं पहुँचा जा सकता है। वे स्वयं केवल नैतिक औचित्य के एक चरण तक की समझ तक आ सकते हैं। इस प्रकार कोहलबर्ग के अनुसार यह महत्वपूर्ण था कि व्यक्तिबच्चों के समक्ष चर्चा के लिए नैतिक दुविधाओं (Moral dilemmas)को प्रस्तुत किया जाए ताकि उन्हें नैतिकता की तर्कसंगतता एवं उस दिशा में उनके विकास के लिए प्रोत्साहन हेतु एक उच्च मंच मिल सके। अंतिम टिप्पणी कोहलबर्ग के नैतिक चर्चा उपागम को संदर्भित करती है। उन्होंने इसे ऐसे तरीकों के रूप में देखा, जिसमें नैतिक विकास औपचारिक शिक्षा के माध्यम से प्रोत्साहित किया जा सकता है।

कोहलबर्ग का, पियाजे के अनुरूप, यह मानना था कि सबसे अधिक नैतिक विकास सामाजिक संपर्क के माध्यम से होता है। यह चर्चा उपागम, व्यक्ति विशेष द्वारा विकसित अंतर्दृष्टि एवं मौजूदा स्तर पर संज्ञानात्मक संघर्ष के परिणाम पर आधारित है।

शिक्षकों के लिए कोहलबर्ग के नैतिक विकास के सिद्धांत पर आधारित मार्गदर्शन

१. कोहलबर्ग के सिद्धांत के चरण 4, 5 और 6 समाज में नैतिकता के सबसे अच्छे चरण माने गए हैं। किन्तु बच्चों के नैतिक विकास के लिए एवं समाज निर्माण के लिए इन्हें सक्रिय रूप से सामाजिक बदलाव के क्रम में शिक्षा में शामिल करने की जरूरत है। चूंकि नैतिक सिद्धांत मात्र वयस्कों द्वारा सिखाये नहीं जा सकते बल्कि शिक्षा के माध्यम से ग्रहण भी किए जा सकते हैं इसलिए कक्षा में शिक्षण के द्वारा भी नैतिक विकास के लिए अवसर प्रदान किए जाने चाहिए।

२. बच्चों की तर्क शक्ति के विकास के लिए उचित अवसर उपलब्ध कराये जाएँ। ताकि उनमें तर्कों के आधार पर निर्णय लेने की क्षमता का विकास हो सके और वे नैतिक मूल्यों को समझ सके।

३. भिन्न-भिन्न स्तर के बच्चों की आवश्यकताएं भिन्न होती हैं। इसीलिए, शिक्षकों को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप ही पाठ्यक्रम का निर्माण करके उनमें नैतिक विकास को संभव बनाना चाहिए।

४. कोहलबर्ग ने अपने सिद्धांत में बच्चों को समूहों में चर्चा का अवसर प्रदान करके उन्हें प्रोत्साहित किया। उसी प्रकार शिक्षक को भी समय-समय पर नैतिक मूल्यों के विकास के लिए कक्षा में नैतिक दुविधाओं को प्रस्तुत करना चाहिए जिससे बच्चों को अपने विचार सबके समक्ष रखने का अवसर प्राप्त होगा जो, उनकी सोच को संशोधित करने और आपसी समझ को विकसित करने में सहायक होगा।

५. शिक्षकों को कक्षा में नैतिक मूल्यों, सोच व तर्क के निर्माण के लिए उचित पर्यावरण का निर्माण करना चाहिए।

६. बच्चों को स्वयं के अनुभवों से सीखने के अवसर प्रदान करने होंगे।

७. बच्चों को स्व-संप्रत्यय (Self Concept) के साथ-साथ आदर्श का भी निर्माण करना चाहिए। इसके लिए शिक्षक और अभिभावकों को देखना चाहिए कि बच्चे के स्व-संप्रत्यय और आदर्श स्वा के बीच अधिक अंतर न हो। इनमें अधिक अंतर होने से व्यक्तित्व और व्यवहार का संतुलन बिगड़ जाता है। इन दोनों के आधार पर ही उनके नैतिक और चारित्रिक व्यवहार का विकास होता है एवं इन्हीं के आधार पर नैतिक और चारित्रिक विकास करना चाहिए।

कोहलबर्ग के नैतिक विकास के सिद्धांत की आलोचना

१. क्या नैतिक तर्क आवश्यक रुप से नैतिक व्यवहार का नेतृत्व करता है? कोहलबर्ग का सिद्धांत नैतिक तर्क से संबंधित है किन्तु यह हमारे वास्तविक कार्यों और उन कार्यो को करने वाले व जानने वाले के मध्य एक बडा अंतर दर्शाता है। इसीलिए, वास्तविक जीवन में इसकी उपयोगिता घट जाती है।

२, क्या न्याय नैतिक तर्क का इकलौता पहलू है जिस पर हम विचार करते हैं ?- आलोचकों का कहना है कि कोहलबर्ग का नैतिक विकास का सिद्धांत नैतिक विकल्पों के रूप में न्याय के संप्रत्यय पर अधिक जोर देता है। इसलिए, यह संपूर्ण रूप से नैतिक विकास करने में सक्षम नहीं होगा।

३. क्या कोहलबर्ग का सिद्धांत पश्चिमी दर्शन पर अधिक जोर देता है? व्यक्तिवादी संस्कृतियॉ व्यक्तिगत अधिकारों पर तथा सामूहिक संस्कृतियाँ समाज के महत्व पर जोर देती हैं। पूर्व की सामूहिक संस्कृतियों के नैतिक दृष्टिकोण भिन्न हो सकते हैं जिनका समर्थन कोहलबर्ग का सिद्धांत नहीं करता। यह केवल व्यक्तिगत अधिकारों तक ही सीमित है। इसलिए सामाजिक स्तर पर नैतिक विकास के ध्येय को हासिल करना कठिन होता है।

४.कोहलबर्ग ने अपने शोध कार्य के लिए पाश्चात्य संस्कृति के पुरुषों के प्रतिदर्श का चयन किया था जिनमें अधिकांशतः अंग्रेज थे| इस सन्दर्भ में कैरल गिलिगन (१९८२) ने देखभाल तथा राजित्व की नैतिकता /नीति (Ethics of Care and Responsiblity) का सिद्धांत दिया जिसमें उन्होंने इस बात पर बल दिया कि नैतिकता मनुष्य के लिंग जाति, वंश, संप्रदाय, देश, काल एवं परिस्थिति से भी प्रभावित होती है| गिलिगन के अनुसार महिलाओं में दूसरों के प्रति सहानुभूति एवं समर्पण की भावना अपेक्षाकृत जल्दी विकसित होती है और उनके नैतिक तर्क इससे प्रभावित होते हैं| अतः व्यक्ति (विशेषतया महिलाएँ) दूसरों (परिवार,साथी आदि) के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को ध्यान में रखते हुए धीरे-धीरे आत्मकेंद्रित निर्णयों से नैतिक तर्क की ओर अग्रसर होता है | अंततः वह 'वसुधैव कुटुम्बकम' की स्थिति तक पहुँच जाता है| उदहारण के तौर पर-मदर टेरेसा आदि|

इस प्रकार, विभिन्न आलोचनाओं के बावजूद कोहलबर्ग का सिद्धांत चर्चा हेतु नैतिक दुविधाओं को पेश करने के लिए शिक्षक के महत्व पर जोर देता है। साथ ही, अगले नैतिक चरण में स्थानांतरित करने के लिए एक व्यक्ति के विचार को प्रोत्साहित भी करता है। शिक्षार्थियों के नैतिक विकास के लिए इन नैतिक चरणों के क्रम और विकास के विवरण को जानना शिक्षक के दायित्व का एक हिस्सा है। रोजमर्रा की जिंदगी में स्थितियों के लिए इस सिद्धांत के आवेदन को समझना संभवतः शिक्षक और छात्र दोनों के लिए उन्नत नैतिक तर्क की एक प्रक्रिया की शुरूआत हो सकती है। इसलिए, अपने स्तर पर नैतिक तर्को के विकास के लिए यह उपयोगी सिद्धांत है।

अपनी प्रगति की जाँच ४

कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धांत के बारे में चर्चा कीजिए |

.....

३.३ सारांश

हम अपने बारे में क्या सोचते है, दूसरे लोग हमारे बारे में क्या सोचते है तथा हम क्या होना चाहते है इसकी एक समग्र तस्वीर ही कहलाता है| का स्वरुप संगठित एवं सतत होता है| स्व का एक पहलू यह भी है कि इसमें व्यक्ति अपना मूल्यांकन कर पाता है| ऐसे अनेक कारक हैं जिनसे व्यक्ति का विकास प्रभावित होता है | इरिक्सन का मनो-सामाजिक सिद्धांत के अंतर्गत यह मानना था कि व्यक्तित्व का विकास श्रृंखलाबद्ध चरणों के अन्तर्गत घटित होता है। इसीलिए, इसे मानव-व्यक्तित्व के विकास का सिद्धांत भी कहा जाता है। यह सिद्धांत सम्पूर्ण जीवन-विस्तार में सामाजिक अनुभवों और विकास का वर्णन करता है। कोहलबर्ग के नैतिक विकास के सिद्धांत के चरण 4, 5 और 6 सामाजिक विकास के अच्छे चरण माने गए है। किन्तु बच्चों के नैतिक विकास के लिए और समाज के निर्माण के लिए इन्हे सक्रिय रूप से सामाजिक बदलाव के क्रम में शिक्षा में शामिल करने की जरूरत होती है।

३.४ अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

अपनी प्रगति की जाँच १ उत्तर -अध्याय ३.२.१ देखे |

अपनी प्रगति की जाँच २ उत्तर -अध्याय ३.२.२ देखे |

अपनी प्रगति की जाँच ३ उत्तर - अध्याय ३.२.३ देखे |

अपनी प्रगति की जाँच ४ उत्तर -अध्याय ३.२.४ देखे |

३.५ शब्दावली

1. इरिक्सन - इरिक इरिक्सन मूल रूप से एक अमेरीकन मनो-विश्लेषक थे। उनका जन्म 15 जून 1902 को फ्रैंक फर्ट, जर्मनी में हुआ था। वे लोकप्रिय मनोवैज्ञानिकों में से थे जिन्होंने विकास के सबसे महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली सिद्धांतो की खोज की। वर्ष 1994 में उनका निधन हो गया था। एरिक्सन का सिद्धांत मनो-विश्लेषक फ्रायड के काम से प्रभावित था। इनके सिद्धांत का मुख्य केंद्र मनो-सामाजिक विकास ही था। इरिक्सन ने मनोसामाजिक सिद्धांत प्रस्तुत किया | इरिक्सन का यह सिद्धांत व्यक्तित्व के लोकप्रिय सिधान्तों में से एक है।

2. कोहलबर्ग - लॉरेंस कोहलबर्ग, हार्वर्ड विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे। वह अपने द्वारा किए 1970 के दशक के काम के लिए प्रसिद्ध हुए। उन्होंने एक विकासात्मक मनोवैज्ञानिक के रूप में शुरूआत की और फिर नैतिक शिक्षा के क्षेत्र की तरफ अग्रसर हुए। उन्हें विशेष रूप से नैतिक विकास के सिद्धांत के लिए जाना जाता है, जिसे उन्होंने विभिन्न शोध अध्ययन के माध्यम से, हार्वर्ड के नैतिक शिक्षा के केंद्र में लोकप्रिय बनाया।

३.६ कार्य आवंटन

ब्रानफ्रेनब्रैनेर का पारिस्थितिक मॉडल के बारें मे चर्चा कीजिए|

३.७ क्रियाएँ

इरिक्सन के मनोसामाजिक सिद्धांत के बारे में चर्चा कीजिए |

३.८ प्रकरण अध्ययन (केस स्टडी)

कोहलबर्ग के सिद्धांत की चर्चा कीजिए |

३.९ सन्दर्भ पुस्तकें

1)सिंह,अरुण कुमार,सिंह आशीष कुमार,व्यक्तित्व का मनोविज्ञान,मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन.दिल्ली,२०००.

2) पाठक,पी.डी.,शिक्षा मनोविज्ञान,आगरा :अग्रवाल पब्लीकेशन्स.

3) पाठक, आर.पी., उच्च शिक्षण मनोविज्ञान PEARSON पब्लीकेशन

4)गुप्ता एस.पी./गुप्ता अलका.,उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान,शारदा पुस्तक भवन,इलाहाबाद.

5) वालिया जे.एस,अधिगमकर्ता ,अधिगम एवं संज्ञान

6) अरुण कुमार सिंग,शिक्षा मनोविज्ञान

7) मंगल,एस.के.,शिक्षा मनोविज्ञान, दिल्ली,:पी.एच.आय.लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड,२०१५

8) Baron,Robert A.,Misra G.,Psychology,Pearson Publication,delhi 2014.

9) Bhatnagar S. and Saxena A.Advanced Educational Psychology .(2008)

10) Sharma R.A., Dubey Shri, Psychological Foundation of Education

संदर्भ

- एरिक्सन, एरिक एच. (१९५०)। चाइल्डहुड एंड सोसायटी। न्यूयॉर्क:नॉर्टन।
- डोएर, एच.ओ. (२००७)। सेलेक्टेड थीओरीस ऑफ डेव्लपमेंट। आशलैंड, ओएच: होग्रेफे एंड हू बरपब्लिशर्स।
- डॉ मालवीय, आर. (२००७)। केयटिंग ए लर्निंग एंविरोंमेंट: चाइल्ड डेव्लपमेंट एंड पाइडागोगीकल इस्सुज। अकैडमिक एक्सलेन्स। दिल्ली।
- कोलबर्ग, एल. (१९६९)। स्टेज और सेकुएंस: द कोग्निटिव अप्रोच टु सोशियलाइजेशन। शिकागो: रेंड मैकनल्ली।
- टैन ओ.एस.,पार्सन्स, आर.डी., हिंसन एस.एल. और सरदो–ब्राउन, डी.(२००३)। एजुकेशनल साइकॉलजी ए प्रैक्टिसनर–रीसर्चर अप्रोच। ऑस्ट्रेलिया: थॉमसन।
- वूलफोक, अनीता (२००७)। एजुकेशनल साइकॉलजी (१०वां एडिशन) । बोस्टन: पियर्सन।
- सेंटरोक्क, जे.डब्लू. (२००८)। एजुकेशनल साइकॉलजी, थर्ड एडीशन। बोस्टन: मैकग्रा–हिल।
- http://www.ehow.com/how_7566430_applypsychosocialdevelopmentclassroom.
- Html
- http://www.icelseducatorsforlearning.ca/index.php?option=com_content&view=article&id=48&Itemid=62
- http://www..psy.pdx.edu/PsiCafe/Key Theorists/Kohlberg.htm
- http://kidedotals.com/book/export/html/251

इकाई ४ भारतीय समाज में बड़ा होना

इकाई की संरचना

4.0 शिक्षण उद्देश्य

4.1 परिचय

4.2 विषय विवेचन

4.2.1 विकास की अवस्थाएँ

4.2.2 शैशवास्था की मुख्य विशेषताएँ

4.2.3 बाल्यावस्था जीवन का अनोखा काल

4.2.4 किशोरावस्था जीवन का सबसे कठिन काल

4.2.5 बच्चे का विविध अवस्थाओं में विकास

4.3 सारांश

4.4 अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

4.5 शब्दावली

4.6 कार्य आवंटन

4.7 क्रियाएँ

4.8 प्रकरण अध्ययन (केस स्टडी)

4.9 सन्दर्भ पुस्तके

4.0 शिक्षण उद्देश्य

इस इकाई से आप निम्नांकित बातों को समझ पाएंगे-

१.मानव के विकास को समझ पाएँगे|

२. मानव विकास की विविध अवस्थाओं के बारे में जान पाएंगे|

३. बालक का विकास किन किन अवस्थाओं में से होता है इसके बारे में जान पाएँगे|

४. बालक के विकास की विविध अवस्थाओं की विशेषता को समझ पाएँगे |

4.1 इकाई परिचय

मानव विकास की कई अवस्थाएं होती हैं | विकास की प्रक्रिया में बालक विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है। सामान्य रूप से इसका वर्गीकरण पांच भागों में किया जाता है। शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था। इन अवस्थाओं में विकास की गति भिन्न-भिन्न होती है। इन अवस्थाओं में बच्चे का केवल शारीरिक विकास ही नहीं होता बल्कि उसका मानसिक, चारित्रिक, नैतिक और सामाजिक विकास भी घटित होता है| इसलिए इन अवस्थाओं की विशेषताओं की जानकारी शिक्षक को अवश्य होनी है | यह यद् रखना चाहिए की विकास की हर अवस्था में शिक्षा का स्वरुप भी भिन्न-भिन्न होता है|

4.2 विषय विवेचन

4.2.1 विकास की अवस्थाएँ

शिक्षा मानव विकास की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि शिक्षा के उद्देश्य शिक्षार्थी की आयु, बुद्धि, रुचि तथा आवश्यकता के अनुरूप निर्धारित किये जाएँ। इसलिए यह तभी संभव है जब शिक्षक को इन सभी के बारें में पर्याप्त जानकारी हो।

सामान्य रूप से विकास की अवस्थाएँ चार मुख्य चरणों (Stages) स्तरों में विभाजित की गयी है- शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था। इन चरणों में विकास की गति भिन्न-भिन्न होती है।

कालसनिक द्वारा बताई गई विकास की अवस्थाएँ

1) जन्म से पूर्व की अवस्था - गर्भाधान से जन्म तक

2) शैशवावस्था - जन्म से 3-4 सप्ताह तक

3) प्रारंभिक शैशवावस्था -1 अथवा 2 महीने से 15 महीने तक

4) उत्तर शैशवावस्था - 15 से 30 महीने तक

5) पूर्व बाल्यावस्था - 30 महीने से 5 वर्ष तक

कोल के अनुसार:-

1) शैशवावस्था - जन्म से 2 वर्ष तक

2) प्रारंभिक बाल्यावस्था - 2 से 5 वर्ष तक

3) मध्य बाल्यावस्था - लडके 6 से 12 वर्ष, लड़कियाँ 5 से 10 वर्ष तक

4) पूर्व किशोर अवस्था या उत्तर बाल्यावस्था - लडके 13 से 14 वर्ष तक, लड़कियाँ 11 से 12 वर्ष तक

5) आरंभिक किशोर अवस्था - लडके 15 से 16 वर्ष तक, लड़कियाँ 15 से 17 वर्ष तक

6) मध्य किशोर अवस्था - लडके 17 से 18 वर्ष तक, लड़कियाँ 15 से 17 वर्ष तक

7) उत्तर किशोर अवस्था - लडके 19 से 20 वर्ष तक, लड़कियाँ 18 से 20 वर्ष

8) आरंभिक प्रौढ़ावस्था - 21 से 34 वर्ष तक।

9) मध्य प्रौढ़ावस्था - 35 से 39 वर्ष तक।

10) उत्तर प्रौढ़ावस्था - 50 से 64 वर्ष तक।

11) आरंभिक वृद्धावस्था - 75 वर्ष से अधिक की आयु

ई.बी. हरलॉक के अनुसार:-

1) जन्म से पहले की अवस्था - गर्भ धारण करने से जन्म तक

2) शैशवावस्था - जन्म से लकर 2 सप्ताह तक

3) शिशुकाल - 2 वर्ष तक

4) बाल्यावस्था - 2 से लेकर 11 या 12 वर्ष तक

5) किशोरावस्था - 11 अथवा 13 वर्ष से 20 अथवा 21 वर्ष

अ) प्रारंभिक किशोर अवस्था - लड़के 12 से 14, लड़कियाँ 11 से 13 वर्ष

ब) पूर्व किशोर अवस्था - 16 से 17 वर्ष तक

क) उत्तर किशोर अवस्था - 20 से 21 वर्ष तक

विकास की अवस्थाएँ

विकास की प्रक्रिया में बालक विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है। इसके संबंध में मनोवैज्ञानिकों में मतभेद है। सामान्य रूप से इसका वर्गीकरण चार भागों में किया जाता है -

1) शैशवावस्थाः- जन्म से 5 या 6 वर्ष तक।

2) बाल्यावस्थाः- 5 या 6 वर्ष से 12 वर्ष तक।

3) किशोरावस्थाः- 12 वर्ष से 18 वर्ष तक।

4) प्रौढावस्थाः- 18 वर्ष के बाद

5) वृद्धावस्था :- 75 वर्ष से अधिक की आयु

क़ानूनी परिभाषाएँ

बालक :-ऐसी उम्र जिस उम्र में बालक बच्चा कहलाता है वह उम्र भारत के अलग-अलग कानूनों में भिन्न- भिन्न दियी हुई है | बाल श्रम निषेध और नियमन अधिनियम १९८६ के अनुसार बालक वह व्यक्ति है जिसने अपने उम्र के १४ साल पूरे नहीं किये है |भारत का संविधान १४ साल से कम उम्र वाले बच्चे को किसी भी हानिकारक जगह काम करने से रोकती है |

नाबालिग :- हिन्दू माइनॉरिटी एंड गार्डियनशिप एक्ट(HMGA)1956 के अनुसार नाबालिग वह व्यक्ति है जिसने उम्र के 18 साल पूरे नहीं किये हैं |

बालिग :- ऐज ऑफ़ मेजोरिटी एक्ट 1875 के अनुसार भारत में अधिवासित हर व्यक्ति जिसने उम्र के 18 साल पूरे किये हों वह बालिग कहलाता है |

किशोर:- किशोर न्याय अधिनियम 2000 (The Juvenile Justice Care and Protection of Children Act 2000) के अनुसार कोई भी व्यक्ति जो 18 वर्ष से कम उम्र का है उसे जेल नहीं भेजा जा सकता| उसे उसके घर पर ही निगरानी में रखा जायेगा और उसके साथ तहत वह बच्चा है जिसे जेल नहीं भेजा जा सकता और उसे घर में ही रखकर उसके साथ एक्ट के अनुसार व्यवहार किया जायेगा|

अपनी प्रगति की जाँच १

१. विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कीजिए|

.....
.....
.....
.....

4.2.2 शैशवावस्था की मुख्य विशेषताएँ

1) शारीरिक विकास में तीव्रता

शैशवावस्था के प्रथम तीन वर्षों में शिशु का शारीरिक विकास अत्यन्त गति से होता है। उसके भार और लम्बाई में वृद्धि होती है। तीन वर्ष के बाद विकास की गति धीमी पड़ जाती है।

2) मानसिक क्रियाओं की तीव्रता

तीन वर्ष की आयु तक शिशु की मानसिक शक्तियाँ कार्य करने लगती हैं। शिशु की मानसिक क्रियाओं जैसे- ध्यान, स्मृति, कल्पना, संवेदना और प्रत्यक्षीकरण आदि के विकास में तीव्रता होती है।

3) सीखने की प्रक्रिया में तीव्रता

गेसल के अनुसार बच्चे प्रथम 6 वर्षों में बाद के 12 वर्षों से दोगुना सीख लेते है। इस अवस्था में शिशु के सीखने की प्रक्रिया बहुत तीव्र होती है।

4) कल्पना की सजीवता

कुप्पुस्वामी के अनुसार चार वर्ष के बच्चे के सबंध में एक अति महत्वपूर्ण बातयह है उसकी कल्पना सजीव होती है । वह सत्य और असत्य में अंतर नहीं कर पाता है।

5) दूसरों पर निर्भरता

शैशवावस्था में जन्म के बाद शिशु कुछ समय तक असहाय स्थिति में रहता है। वह मुख्यतः अपने माता -पिता विशेष रूप में अपनी माता पर निर्भर रहता है। वह शारीरिक आवश्यकताओं के अलावा प्रेम और सहानुभूति पाने के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है।

6) आत्म प्रेम की भावना

शिशु में आत्म प्रेम की भावना बड़ी प्रबल होती है। शिशु अपने माता -पिता, भाई-बहन आदि का प्रेम पाना चाहता है | उसे लगता है की प्रेम उसके अलावा और किसी को न मिले, ऐसा होने की स्थिति में उसे दूसरे बच्चे से इर्ष्या होने लगती है।

7) नैतिकता का अभाव

शिशु में नैतिकता का पूर्ण रूप से अभाव होता है। उसे अच्छेबुरे, उचित और अनुचित बातों की कोई समझ नहीं होती।

8) मूलप्रवृत्तियों पर आधारित व्यवहार

शिशु अपनी मूलप्रवृत्तियों पर आधारित व्यवहार करता है। यदि उसको किसी बात पर क्रोध आ जाता है तो वह उसे अपनी वाणी द्वारा प्रकट करता है। भूख लगती है तो उसको जो भी वस्तु मिलती है उसे मुँह में रख लेता है।

9) सामाजिक भावना का विकास

इस अवस्था के अंतिम वर्ष में शिशु में सामाजिक भावना का विकास होता है। वह 2 से 5 वर्ष तक के बच्चों के साथ खेलना पसंद करता है। वह अपनी वस्तुओं में दूसरों को साझीदार बनाता है।

10) दूसरे बच्चों में रुचि या अरुचि

शिशु में दूसरे बच्चों के प्रति रुचि या अरुचि प्रकट होती है। स्किनर के अनुसार वह एक वर्ष की आयु में ही अपने साथियों में रुचि लेने लगता है।

11) संवेगों का प्रदर्शन

शिशु में जन्म के समय उत्तेजना के अलावा कोई अन्य स्पष्टसंवेग नहीं होता है। बाल वैज्ञानिकों ने शिशु में मुख्य रूप से चार संवेग माने है- भय, क्रोध, प्रेम और पीड़ा।

12) काम-प्रवृत्ति

बाल मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि शिशु में काम-प्रवृत्ति बहुत प्रबल होती है। परवयस्कों के समान वह उसको व्यक्त नहीं कर पाता है। अपनी माता का स्तनपान करना और यौनांगों पर हाथ रखना बच्चे की काम-प्रवृत्ति के सूचक व्यवहार हैं।

13) दुहराने की प्रवृत्ति

शिशु में दुहराने की प्रवृत्ति बहुत प्रबल होती है। उसमे शब्दों और गतियों को दोहराने की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है, उसमें उन्हें आनंद मिलता है।

14) जिज्ञासा की प्रवृत्ति

शिशु में जिज्ञासा की प्रवृत्ति सबसे ज्यादा होती है। वह हर चीज को जानना चाहता है। वह अपनी जिज्ञासा शान्त करने के लिये क्यों और कैसे जैसे प्रश्न पूछता है। अपने खिलौने का विभिन्न प्रकार से प्रयोग करता है।

15) अनुकरण द्वारा सीखने की प्रवृत्ति

शिशु में अनुकरण द्वारा सीखने की प्रवृत्ति होती है। वह अपने मातपिता, भाई-बहन आदि के कार्य और व्यवहार का अनुकरण करता है। यदि वह ऐसा नहीं कर पाता है तो रोकर या चिल्लाकर अपनी असमर्थता प्रकट करता है।

16) अकेले व साथ खेलने की प्रवृत्ति

शिशु में पहले अकेले खेलने की और बाद में दूसरों के साथ खेलने की प्रवृत्ति होती है।

शैशवावस्था में बच्चे का शारीरिक विकास

1) भार

1) जन्म के समय और पूरी शैशवावस्था में बच्चे का भार बालिका की तुलना में अधिक होता है।
2) जन्म के समय, बच्चे-7.15 पौंड, बालिका 7.13 पौंड भार के होते हैं|
3) पहले 6 माह में भार दुगुना और एक वर्ष में तिगुनाहोता है|
4) दूसरे वर्ष में शिशु का भार 1/2 पौंड प्रति माह के हिसाब से बढता है।

2) लम्बाई

1) संपूर्ण शैशवावस्था में बच्चे की लंबाई बालिकाओं से अधिक होती है।
2) जन्म के समय बच्चे की लंबाई 20.5 इंच और बालिका की 20.3 इंच होती है|
3) पहले वर्ष मे शिशु की लंबाई लगभग 10 इंच और दूसरे वर्ष मे 4 या 5 इंच बढ़ती है।

3) सिर व मस्तिष्क

1) नवजात शिशु की सिर की लंबाई उसके शरीर की कुल लंबाई की 1/4 होती है।
2) पहले दो वर्षों में सिर तीव्र गति से बढ़ता है।
3) जन्म के समय मस्तिष्क का भार 360 ग्राम होता है|
4) यह भार दो वर्षों में दुगुना हो जाता है।

4) हड्डियाँ

1) हड्डियाँ छोटी और संख्या में 270 होती है। ये छोटी, कोमल, लचीली और भली भांति जुड़ी नहीं होती है। ये कैल्शियम फॉस्फेट और अन्य खनिज पदार्थो के कारण दिन प्रतिदिन कड़ी हो जाती है जिसे अस्थिकरण कहते है।

5) दाँत

छह माह में शिशु के अस्थायी या दूध के दाँत निकलने शुरू हो जाते हैं। एक वर्ष तक दांतों की संख्या आठ हो जाती है। लगभग 4 वर्ष की आयु तक शिशु के पूरे दाँत निकलते हैं।

शैशवावस्था में बच्चे का मानसिक विकास

1) "नवजात शिशु का मस्तिष्क कोरे कागज के समान होता है, जिस पर वह अपने अनुभव लिखता है|"

2) बुद्धि

जन्म के समय बच्चा रोना, छिंकना, हिचकी लेना, दूध पीना, हाथ-पैर हिलाना जानता है, फिर धीरे-धीरे उसका बौद्धिक विकास होता है।

3) मानसिक स्वतंत्रता

बच्चा पूर्ण रूप से अपने माता-पिता या संरक्षक पर आश्रित होता है।

4) मानसिक योग्यता

बच्चा हल्की और भारी वस्तुओं एवं विभिन्न प्रकार के रंगो में अन्तर करना सीख जाता है, संयुक्त और जटिल वाक्य बोलने लगता है अर्थात् उनमें मानसिक योग्यताओं का विकास शुरु हो जाता है।

5) ध्यान

बच्चा बड़ें आकार की वस्तुओं को ध्यान से देखता है, ध्वनि सुनकर उस ध्वनि का अनुकरण करता है।

6) चिन्तन शक्ति,तर्क, कल्पना शक्ति

वह विचित्र प्रकार के प्रश्न उठाकर तर्क करता है और कल्पना के संसार में खोया रहता है जैसे-दिवा-स्वप्न, हवाई किले, परियों की कहानियाँ।

7) रुचियाँ

उनमें रुचियों का विकास प्रारम्भ हो जाता है। उदाहरण के तौर पर बच्चे खिलौनों से खेलने में रुचि लेते हैं।

शैशवावस्था में बच्चे में संवेगात्मक विकास

1) शिशु जन्म के समय से ही संवेगात्मक व्यवहार की अभिव्यक्ति करता है, शिशु का रोना, चिल्लाना और हाथ पैर पटकना इसका प्रमाण है।

2) शिशु में संवेगात्मक व्यवहार अत्यधिक अस्थिर होता है। उसका संवेग कुछ ही समय के लिए रहता है। (उदाहरणः- रोता हुआ शिशु खिलौना पाकर तुरन्त रोना छोंड़कर हँसने लगता है)।

3) संवेगात्मक विकास में क्रमशः परिवर्तन होता है।

तीन वर्ष की आयु में शिशु में अपने साथियों के प्रति प्रेम का विकास हो जाता है| दो वर्ष की आयु होने पर उसमें भय का धीरे-धीरे विकास आरंभ होता है।

शैशवावस्था में बच्चे का सामाजिक विकास

1) जन्म से एक माह तक शिशु मनुष्यों और आवाजों की पहचान नहीं कर पाता।

2) दूसरे माह में वह आवाज पहचानता है एवं दूसरे व्यक्ति को देखकर मुस्कुरता है।

3) तीसरे माह अपनी माँ को पहचानने लगता है और दूसरों के साथ खेलता एवं हँसता है।

4) छठे से आठवें माह में वह परिचित व्यक्तियों एवं अपरिचित व्यक्तियों में पहचान कर लेता है एवं व्यक्तियों के शब्द, हाव-भाव का अनुकरण करता है।

5) तीसरे वर्ष में वह दूसरे बालकों के साथ खेलने लगता है और इस प्रकार उनसे सामाजिक संबंध स्थापित करता है।

शैशवावस्था में बच्चे का चारित्रिक विकास

1) जन्म से तीन माह तक शिशु को अपने उचित-अनुचित आचरण के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का ज्ञान नहीं होता।

2) 2 वर्ष की आयु में बच्चे अपने अच्छे या बुरे कार्यों के अनुसार अपने को अच्छा या खराब लड़का/लड़की समझने लगते हैं।

3) 2 वर्ष की आयु प्राप्त करते-करते शिशु में स्वार्थ की भावना विकसित होने लगती है और वह इस काल में अपने खिलौने को भी किसी बच्चे से साझा नहीं करता है।

4) बच्चे 3-4 वर्ष की आयु में बड़ों के आदेशों का पालन करते है, अच्छे-बुरे कार्यो में अन्तर समझने लगता है।

5) 5 वर्ष की आयु में बच्चे मूल्यों को बिना समझे ही स्वीकार करने लगता है।

शैशवावस्था में शिक्षा का स्वरूप

शैशवावस्था को सीखने का आदर्शकाल माना गया है। इस अवस्था में बच्चा सक्रियता से सीखना आरम्भ करता है। शिशु देश के भावी नागरिक होते हैं। इसलिये इस अवस्था में ऐसी शिक्षा होनी चाहिए जिससे शिशु का सर्वांगीण विकास हो सके।

1) उचित वातावरण -

घर और विद्यालय का वातावरण शिशु के विकास के लिए उपयुक्त होना चाहिए। यह वातावरण शांत, स्वस्थ और सुरक्षित होना चाहिए।

2) उचित व्यवहार -

माता-पिता और शिक्षकों को शिशु के प्रति उचित व्यवहार रखना चाहिए। उसे डांटना या पीटना नहीं चाहिए, और न उसे भय या क्रोध दिखाना चाहिए बल्कि उन्हें उसके प्रति सदैव प्रेम, शिष्टता और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए।

3) जिज्ञासा की संतुष्टि -

शिशु अपने आसपास की वस्तुओं के संबंध में अनेक प्रश्न पूछकर अपनी जिज्ञासा को शांत करना चाहता है। माता-पिता और शिक्षक को भी उनके प्रश्नों का उत्तर देकर उनकी जिज्ञासा को संतुष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए।

4) वास्तविकता का ज्ञान -

शिशु काल्पनिक जगत को ही वास्तविक संसार समझता है। अंतः उसे वास्तविकता के निकट लाने का प्रयास करना चाहिए। इसलिये मॉण्टेसरी पद्धति में परियों की कहानियों को स्थान नहीं दिया है क्योंकि वो बच्चे को वास्तविकता से दूर ले जाती है।

5) खेल एवं क्रिया के माध्यम से शिक्षा -

शिशु को खेल में जन्म से ही रुचि होती है। वह अधिकांश बातें खेल के माध्यम से ही सीखता है। स्ट्रेग के अनुसार शिशु अपने और अपने संसार के बारे में अधिकांश बातें खेल द्वारा सीखता है। इसलिये इस अवस्था में अधिकाधिक शिक्षा खेल के माध्यम से देनी चाहिए।

6) दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग -

इस अवस्था में शिशु की शिक्षा में कहानियों और सचित्र पुस्तकों का विशिष्ट स्थान होना चाहिए। शिशुओं की शिक्षा को अधिक से अधिक रोचक बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए।

7) आत्म निर्भरता का विकास -

शिशु को ऐसी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए जिससे उसको स्वयं सीखने काम करने और विकास करने की प्रेरणा मिले।

8) निहित गुणों का विकास -

हर शिशु में अनेक गुण निहित होते हैं। शिक्षा से इन निहित गुणों का विकास होना चाहिए।

9) ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण -

शिशु ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव से ज्ञानार्जन करते हैं। रूसो ने लिखा है कि बच्चे के हाथ पैर और नेत्र उसके प्रारंभिक शिक्षक है। इन्हीं से वह पाँच वर्ष में ही पहचान सकता है, सोच सकता है और याद कर सकता है।

10) सामाजिक भावना का विकास -

शैशवावस्था के अन्तिम भाग में शिशु दूसरे बच्चों के साथ मिलना-जुलना और खेलना पसंद करता है। उसे इन बातों का अवसर दिया जाना चाहिए ताकि उसमें सामाजिक भावना का विकास हो।

11) उत्तम आदतों का निर्माण -

शैशवावस्था में शिशु को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए जिससे उनमें उत्तम आदतों का निर्माण हो सके यथा - समय पर उठना, खाना, सोना और शरीर की स्वच्छता।

12) आत्म प्रदर्शन का अवसर -

शिशु में आत्म प्रदर्शन की भावना होती है। अतः उसे ऐसे कार्य करने के अवसर दिये जाने चाहिए जिसके द्वारा वह अपनी इस भावना को व्यक्त कर सके।

अपनी प्रगति की जाँच २

१. शैशवावस्था की विशेषताएँ बताएं |

.....

.....

.....

.....

4.2.3 बाल्यावस्था - जीवन का अनोखा काल

शैशवावस्था के उपरांत बाल्यावस्था आती है। 6 से 12 वर्ष की अवस्था को बाल्यावस्था कहा गया है। यह अवस्था बच्चे के व्यक्तित्व निर्माण की अवस्था होती है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस काल को मानव विकास का अनोखा काल कहा जाता है। इस अवस्था को समझ पाना कठिन होता है क्योंकि विकास की दृष्टि से यह एक जटिल अवस्था होती है। इस अवस्था में विभिन्न प्रकार के शारीरिक मानसिक सामाजिक एवं नैतिक परिवर्तन बच्चे में उत्पन्न होते हैं।

बाल्यावस्था की मुख्य विशेषताएँ-

1) शारीरिक व मानसिक स्थिरता

6 या 7 वर्ष की आयु के बाद बच्चे के शारीरिक और मानसिक विकास में स्थिरता आ जाती है। वह स्थिरता उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियों को दृढ़ता प्रदान करती है। फलस्वरूप उसका मस्तिष्क परिपक्व-सा और वह स्वयं वयस्क-सा जान पडता है। इसलिये रॉस ने बाल्यावस्था को मिथ्या -परिपक्वता का काल बताया है।

2) मानसिक योग्यताओं में वृद्धि

बाल्यावस्था में बच्चे की मानसिक योग्यताओं में निरंतर वृद्धि होती है। उसकी संवेदना और प्रत्यक्षीकरण की क्षमताओं में वृद्धि होती है। वह साधारण बातों पर अधिक देर तक अपने ध्यान को केंद्रित कर सकता है।

3) जिज्ञासा की प्रबलता

बच्चे की जिज्ञासा विशेष रूप से प्रबल होती है। वह जिन वस्तुओं के संपर्क में आता है उनके बारे में हर तरह के प्रश्न पूछकर जानकारी प्राप्त करना चाहता है। ये प्रश्न शैशवावस्था के साधारण प्रश्नों से भिन्न होते हैं।

4) वास्तविक जगत से संबंध

इस अवस्था में बच्चा वास्तविक जगत की परिस्थितियों का संज्ञान लेता है| वह हर वस्तु से आकर्षित होकर उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहता है।

5) रचनात्मक कार्यो में आनंद

बच्चे को रचनात्मक कार्यो में अधिक आनंद आने लगता है। बच्चे को साधारणतः घर के बाहर कार्य करने में रुचि होती है। उसके विपरीत बालिका घर में ही कोई-न-कोई कार्य करना चाहती है। जैसे सिलाई,कढाई करना इत्यादि।

6) सामाजिक गुणों का विकास

इस अवस्था में बच्चे में अनेक सामाजिक गुणों का विकास होता है। जैसे सहयोग, सहनशीलता, सदभावना, आज्ञाकारिता।

7) नैतिक गुणों का विकास

इस अवस्था के आरंभ में ही नैतिक गुणों का विकास होने लगता है। उसे अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित बातों के बारे में समझ आती है।

8) बहिर्मुखी व्यक्तित्व का विकास

शैशवावस्था में बच्चे का विकास अंतर्मुखी होता है। बाल्यावस्था में यह विकास बहिर्मुखी होता है क्योंकि शैशवावस्था में बच्चे एकान्तप्रिय और केवल अपने में ही रुचि लेने वाला होते है| बाल्यावस्था में बाहय जगत में उसकी रुचि उत्पन्न हो जाती है।

9) संवेगों का दमन व प्रदर्शन

बच्चे अपने संवेगों पर अधिकार रखना एवं अच्छी और बुरी भावनाओं में अंतर करना सीख जाते है।

10) संग्रह करने की प्रवृत्ति

बाल्यावस्था में बच्चों में संग्रह करने की प्रवृत्ति बहुत ज्यादा पाई जाती है। बच्चे विशेष रूप से काँच की गोलियों, टिकटों, मशीनों के भागों और पत्थर के टुकडों का संचय करते है। बालिकाओं में चित्रों ,खिलौनो, गुड़ियों और कपड़ों के टुकडों को संग्रह करने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

11) निरूद्देश्य भ्रमण की प्रवृत्ति

बच्चे में बिना किसी उद्देश्य के इधर-उधर घूमने की प्रवृत्ति अधिक होती है।

12) काम प्रवृत्ति की न्यूनता

बच्चे अपना अधिकांश समय मिलने-जुलने, खेलने-कूदने और पढ़ने-लिखने में व्यतीत करता है अतः बच्चे में काम-प्रवृत्ति की न्यूनता होती है।

13) सामूहिक प्रवृत्ति की प्रबलता

इस अवस्था में बच्चे की सामूहिक प्रवृत्ति बहुत प्रबल होती है।इसलिये ज्यादा से ज्यादा समय वो दूसरे बालकों के साथ खेलने में व्यतीत करता है।

14) सामूहिक खेलों में रुचि

बालकों को सामूहिक खेलों में अत्यधिक रुचि होती है। वह 6 या 7 वर्ष की आयु में छोटे समूहों में और काफी समय तक खेलता है। खेल के समय बालिकाओं की अपेक्षा बालकों मे काफी झगड़े होते है।

15) रूचियों में परिवर्तन

इस अवस्था में बच्चे की रुचियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। ये रुचियाँ स्थायी रूप धारण न करके वातावरण में परिवर्तन के साथ परिवर्तित होती रहती है।

बाल्यावस्था में बच्चे का शारीरिक विकास

इस अवस्था में बालक के शारीरिक विकास की निम्मिलिखित विशेषताएँ होती हैं :

1) बच्चे के भार में पर्याप्त वृद्धि होती है|

2) 12वर्ष के अंत में भार 80 और 95 पौण्ड के बीच हो जाता है|

3) 9 या 10 वर्ष की उम्र में बच्चे का भार बालिकाओं से अधिक होता है|

4) 6 या 12 वर्ष तक शरीर की लंबाई कम बढ़ती है। इन वर्षों में लंबाई लगभग 2 या 3 इंच बढ़ती है।

5) सिर के आकार में क्रमशः परिवर्तन होता है|

6) 5 वर्ष की आयु में बच्चों का सिर प्रौढ उम्र के व्यक्तियों के सिर के आकार का 90% और दस वर्ष की आयु में 95% होता है।

7) 9 वर्ष की आयु में बच्चे के मस्तिष्क का भार उसके कुल शरीर के भार का 90% होता है।

8) इस अवस्था में हड्डियों की संख्या 350 हो जाती है। अस्थीकरण की प्रक्रिया शुरू रहती है।

9) 6 वर्ष की आयु में बच्चे के दूध केदाँत गिरने लग जाते है और स्थायी दॉत आ जाते है। स्थायी दॉतों की संख्या 32 होती है।

बाल्यावस्था में बच्चे का मानसिक विकास

1) जब बच्चा लगभग 6 वर्ष का हो जाता है, तब उसकी मानसिक योग्यताओं का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है।

2) बाल्यावस्था बौद्धिक विकास की अवस्था है। इस अवस्था में अवलोकन की शक्ति, तर्क शक्ति, स्मरण शक्ति, ध्यान एवं विचार शक्ति का विकास होता है।

3) स्वभाव में स्थिरता तथा व्यवहार पर नियंत्रण होना शुरू हो जाता है। क्रोध आने पर भी प्रकट होने नहीं देते। मानसिक रूप से स्वतन्त्र नहीं होता है।

4) छोटी कहानियों और कविताओं को अच्छी तरह दोहराने का ज्ञान होता है। प्रतिदिन साधारण समस्याओं का समाधान करने की योग्यता होती है।

5) इस अवस्था में बच्चा हर चीज को ध्यानपूर्वक देखता है। ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है।

6) इस अवस्था में विचार शक्ति का अर्थात् चिन्तन शक्ति का विकास होता है।

7) तर्क शक्ति एवं कल्पना शक्ति का विकास होता है।

8) रुचियों का विकास हो रहा होता है। वे छोटी कहानियाँ, कविताओं, खेल आदि में बहुत अधिक रुचि लेते है। जब बच्चे लगभग 6 वर्ष के हो जाते हैं, तब उनकी मानसिक योग्यताओं का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है ।

बाल्यावस्था में बच्चे में संवेगात्मक विकास

1) बच्चे के संवेग अधिक निश्चित और कम शक्तिशाली हो जाते हैं।

2) बच्चे के संवेगों को दमन करने की क्षमता आ जाती है।

3) बच्चे के संवेग पर विद्यालय के वातावरण का व्यापक प्रभाव पडता है। आदर्श, स्वतन्त्र, और स्वस्थ वातावरण उसके संवेगों का परिष्कार करता हैं| जबकि भय, आतंक और कठोरता के वातावरण में ऐसा होना असंभव है।

4) अप्रिय व्यवहार, शारीरिक दण्ड और कठोर अनुशासन बच्चे में मानसिक ग्रन्थियो का निर्माण कर देते है जो उसके संवेगात्मक विकास को विकृत कर देता है।

बाल्यावस्था में बच्चे का सामाजिक विकास

1) इस अवस्था में बच्चे प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश करते हैं। वहाँ नए वातावरण से अनुकूलन करते हैं, नए मित्र बनाना सीखते हैं।

2) इस उम्र में बच्चे के व्यवहार में उन्नति और परिवर्तन आरम्भ हो जाता है। फलस्वरूप उनमें स्वतंत्रता, सहायता और उत्तरदायित्व के गुणों का विकास होता है।

3) बच्चा किसी टोली का सदस्य बनता है और सामाजिक कार्य में भाग लेता है।

4) टोली बच्चे के आत्म-नियन्त्रण, साहस, न्याय,सहनशीलता, नेता के प्रति भक्ति, दूसरों के प्रति सदभावना आदि गुणों का विकास करती है।

5) इस अवस्था में बच्चे शिक्षक एवं बड़ों को सम्मान देता है। बच्चे के वांछनीय या अवांछनीय व्यवहार में निरन्तर प्रगति होती रहती है।

बाल्यावस्था में बच्चे का चारित्रिक विकास

1) इस अवस्था में बच्चे दूसरे बालकों के सम्पर्क में आते है। फलस्वरूप उसके आचरण में परिवर्तन होना आरम्भ हो जाता है।
2) बच्चा विभिन्न परिस्थितियों में उचित और अनुचित में अन्तर करना जान जाता है।
3) न्याय एवं ईमानदारी जैसी प्रबल भावनाएँ व्यक्त करता है। बड़ों की आज्ञा का पालन करता है।
4) घर में स्वार्थपूर्ण और अनुचित, पर विद्यालय में निःस्वार्थ और उचित व्यवहार करता है।
5) बच्चे में विवेक, न्याय, ईमानदारी और मूल्यों की भावना का विकास होने लगता है।

बाल्यावस्था में शिक्षा का स्वरूप

इस अवस्था में बच्चा विद्यालय में जाने लगता है और उसे नवीन अनुभव प्राप्त होते हैं। बाल्यावस्था शैक्षिक दृष्टि से बच्चे के निर्माण की अवस्था है। स्लेयर, जोन्स व सिम्पसन के अनुसार, बाल्यावस्था वह समय है, जब व्यक्ति के आधारभूत दृष्टिकोणों, मूल्यों और आदर्शों का बहुत सीमा तक निर्माण होता है। अतः उसकी शिक्षा का स्वरूप निश्चित करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए-

1) भाषा के ज्ञान पर बल

बाल्यावस्था भाषा सीखने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल होता है। अतः इस अवस्था में भाषा के ज्ञान पर अधिकाधिक बल देना चाहिए।

2) उपयुक्त विषयों का चुनाव

बच्चे के लिए लाभप्रद और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने योग्य उपयुक्त विषयों का चुनाव दिया जाना चाहिए| भाषा, अंकगणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, ड्राइंग, चित्रकला, पत्रलेखन, निबंध रचना आदि विषयों का समावेश होना चाहिये|

3) रोचक विषय-सामग्री

बच्चों की रुचियों को ध्यान में रखकर पाठ्य-विषय और शिक्षण विधि में उसकी रुचियों के अनुसार परिवर्तन किया जाना आवश्यक है।

4) पाठ्य-विषय व शिक्षण-विधि में परिवर्तन

इस अवस्था में बच्चे की रुचियो में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। अतः पाठय-विषय और शिक्षण-विधि में उसकी रुचियों के अनुसार परिवर्तन किया जाना आवश्यक है।

5) जिज्ञासा की संतुष्टि

बच्चे को इस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे उसकी जिज्ञासा की संतुष्टि हो।

6) सामूहिक प्रवृत्ति का विकास

बच्चे में समूह में रहने की प्रबल प्रवृत्ति होती है। वह अन्य बालकों से मेलजोल और उनके साथ कार्य करना या खेलना चाहता है।

7) रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था

विद्यालय में विभिन्न प्रकार के रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था की जानी चाहिए क्योंकि बच्चे की रचनात्मक कार्यो में विशेष रुचि होती है।

8) नैतिक एवं संवेगात्मक विकास

पियाजे द्वारा किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि आठ वर्ष की आयु के बालकों में नैतिक मूल्यों के विकास को सही दिशा दी जानी चाहिए।

9) संवेग के प्रदर्शन का अवसर

इस अवस्था में बालकों का संवेगात्मक विकास विशिष्ट रूप से होता है। कोल एवं ब्रुस ने बाल्यावस्था को संवेगात्मक विकास का अनोखा काल माना है। यह विकास का अनोखा काल माना जाता है। यह विकास तभी संभव है, जब बच्चे के संवेगों का दमन न किया जाए।

10) संचय प्रवृत्ति को प्रोत्साहन

बाल्यकाल में बच्चे में संचय की प्रवृत्ति होती है। उसे जो भी वस्तु अच्छी लगती है। उसी का वह संचय करता है। इसलिए शिक्षक का कर्तव्य है कि उसे शिक्षाप्रद वस्तुओं का संचय करने के लिए प्रोत्साहित करे।

11) विभिन्न सामाजिक गुणों का विकास करना

बालकों में विभिन्न सामाजिक गुणों का विकास होने के लिये विद्यालय में ऐसी क्रियाओं का अनिवार्य रूप से संगठन किया जाना चाहिए, जिनमें भाग लेकर बच्चे में अनुशासन,आत्मविश्वास, सहानुभुति प्रतिस्पर्धा, सहयोग आदि सामाजिक गुणों का अधिकतम विकास हो।

अपनी प्रगति की जाँच 3

१. बाल्यावस्था जीवन का अनोखा काल होता है| स्पष्ट कीजिए|

.....

4.2.4 किशोरावस्था

किशोरावस्था वह समय है जिसमें किशोर अपने को वयस्क समझता है| मानव जीवन के विकास की प्रक्रिया में किशोरावस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। बाल्यावस्था समाप्त होने के बाद किशोरावस्था शुरू होती है। इसे बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य का सन्धिकाल कहते हैं।

अंग्रेजी भाषा में किशोरावस्था के लिए प्रयुक्त शब्द एडोलेसन्स लैटीन भाषा से लिया गया है जिसका अर्थ परिपक्वता की ओर बढ़ना है।

सामान्यतः किशोरावस्था 12 वर्ष की आयु से 18 वर्ष की आयु तक मानी जाती है। इस अवस्था को तूफान एवं संवेगों की अवस्था कहा गया है। इस अवस्था में किशोर के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक विकास में क्रांतिकारी परिवर्तन होते हैं। इस अवस्था में किशोर और किशोरियों में एक नवीन ऊर्जा का संचार होने लगती है। नवीन इच्छाए,अभिलाषाएँ उनमें तीव्र रूप से उठती है।

किशोरावस्था की मुख्य विशेषताएँ

1) शारीरिक विकास

किशोरावस्था को शारीरिक विकास का सर्वश्रेष्ठ काल माना जाता है। इस काल में किशोर के शरीर में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। जैसे भार और लम्बाई में तीव्र वृद्धि, माँसपेशियों और शारीरिक ढाँचे में दृढता, किशोर में दाढ़ी और मूंछ एवं किशोरियों में प्रथम मासिक स्त्राव के लक्षण।

2) मानसिक विकास

किशोर के मस्तिष्क का लगभग सभी दिशाओं में विकास होता है। इस अवस्था में वृद्धि एवं विकास अधिकतम हो जाता है। उसमें विशेष रूप से अग्रलिखित मानसिक गुण पाये जाते है। कल्पना और दिवास्वप्नों की बहुलता, बुद्धि का अधिकतम विकास, सोचने-समझने और तर्क करने की शक्ति में वृद्धि, विरोधी मानसिक दशायें आदि।

3) घनिष्ठ व व्यक्तिगत मित्रता

किसी समूह का सदस्य होते हुए भी किशोर केवल एक या दो बालकों से घनिष्ठ संबंध रखता है, जो उनके परम मित्र होते है।

4) व्यवहार में विभिन्नता

किशोर में आवेगों और संवेगों की बहुत प्रबलता होती है। यही कारण है कि वह विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार का व्यवहार करता है। जैसे कभी अत्यधिक क्रियाशील तो कभी अत्यधिक शिथिल ।

5) स्थिरता व समायोजन का अभाव

रोस ने किशोरावस्था को शैशवावस्था का पुनरावर्तन काल कहा है। उसकी बाल्यावस्था की स्थिरता समाप्त हो जाती है और वह शिशु के समान अस्थिर हो जाता है।

6) स्वतंत्रता व विद्रोह की भावना

किशोर मे स्वतंत्रता व विद्रोह की भावना प्रबल होती है। यदि उस पर कोई प्रतिबन्ध लगाया जाता है तो वह विद्रोह करता है। वह किसी भी प्रकार के बंधनों में बंधना नही चाहता बल्कि स्वतंत्र रहना चाहता है।

7) काम शक्ति की परिपक्वता

किशोरावस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस अवस्था में कामप्रवृत्ति तीव्र होती है। अवस्था के पूर्वकाल में बच्चे और बालिकाओं में समलिंगी आकर्षण बढ़ता है और उत्तरकाल में विषमलिंगी आकर्षण तीव्र रूप से बढ़ता है।

8) समूह को महत्व

किशोर अपने घर, परिवार और विद्यालय से महत्वपूर्ण उस समूह को समझता है जिस समूहका वह सदस्य होता है। वह अपने समूहों के दृष्टिकोण को अधिक महत्व देता है और उन्हीं के अनुसार अपने व्यवहार,रुचियों, इच्छाओं आदि में परिवर्तन करता है।

9) रुचियों में परिवर्तन एवं स्थिरता

किशोरावस्था में रुचियों में परिवर्तन होता है, एवं स्थिरता आती है। वेलनटाईन के अनुसार क्शिोर बालक और बालिकाओं की रुचियों में समानता होती है और विभिन्नता भी। बालकों को खेल-कूद और व्यायाम में तथा बालिकाओं को कढाई-बुनाई, नृत्य और संगीत में विशेष आकर्षण होता है।

10) समाज सेवा की भावना

किशोर में समाज सेवा की भावना तीव्र होती है।

11) ईश्वर व धर्म में विश्वास

किशोरावस्था के आरम्भ में किशोर को ईश्वर व धर्म में विश्वास और आस्था नहीं होती। पर धीरे-धीरे ईश्वर और धर्म के प्रति आस्था और विश्वास में वृद्धि होने लगती है|

12) जीवन दर्शन का निर्माण

किशोर स्वयं अच्छी और बुरी, सत्य और असत्य, नैतिक और अनैतिक इत्यादि बातों के बारे में विचार करने लगता है जिसके फलस्वरूप अपने जीवन दर्शन का निर्माण करता है।

13) अपराध प्रवृत्ति का विकास

किशोरावस्था में बच्चे में अपने जीवन-दर्शन, नये अनुभवों की इच्छा, निराशा, असफलता, प्रेम के अभाव आदि के कारण अपराध प्रवृत्ति का विकास होता है।

14) नायक-पूजा

किशोरावस्था में नायक-पूजा प्रवृत्ति पायी जाती है। क्शिोर किसी भी व्यक्ति को जैसे ऐतिहासिक महापुरुष, वीर, बलिदानी, सन्त, धार्मिक महापुरुष, कुशल खिलाडी, अच्छे वक्ता, राष्ट्रीय नेता, शिक्षक, सिनेमा अभिनेता और अभिनेत्री को अपना आदर्श मान लेता है और उसकी पूजा करने लगता है,हर समय उसकी प्रशंसा करता है। उसको देखकर प्रसन्न होता है। उसका अनुकरण करता है।

किशोरावस्था में बच्चे का शारीरिक विकास

1) किशोरावस्था में बालकों का भार बालिकाओं की तुलना में अधिक बढता है।

2) बालकों का भार बालिकाओं से 25 पौंड अधिक होता है।

3) लंबाई बहुत तेजी से बढ़ती है।

4) बच्चे की लंबाई 18 वर्ष और उसके बाद भी बढ़ती है।

5) बालिका अपनी अधिकतम लंबाई पर 16 वर्ष की आयु में पहुँच जाती है।

6) 15 या 16 वर्ष की आयु में सिर का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है एवं मस्तिष्क का भार 1,200 -1,400 ग्राम के बीच में होता है।

7) इस अवस्था में अस्थीकरण की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। हड्डियों में पूरी मजबूती आ जाती है।

8) इस अवस्था में बालक और बालिकाओं के सभी दाँत निकल जाते हैं।

किशोरावस्था में बच्चे का मानसिक विकास

1) मानसिक विकास 15 से 20 वर्ष की आयु में अपनी उच्चतम सीमा पर पहुँच जाता है।

2) किशोरावस्था में बुद्धि का अधिकतम विकास हो जाता है।

3) रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, अंधविश्वासों और पुरानी परम्पराओं को अस्वीकार करके स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने का प्रयास करता है।

4) मानसिक योग्यताओं का स्वरूप निश्चित हो जाता है। उसमें सोचने, समझने, विचार करने, अन्तर करने और समस्या का समाधान करने की योग्यताएँ उत्पन्न हो जाती है।

5) किशोर में ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता का पर्याप्त विकास हो जाता है। किसी विषय या वस्तु पर अपने ध्यान को बहुत देर तक केन्द्रित रख सकता है।

6) किशोरों में चिन्तन करने की शक्ति होती है। इसकी सहायता से वह विभिन्न प्रश्नों और समस्याओं का हल खोजता है।

7) तर्क शक्ति एवं कल्पना शक्ति का पर्याप्त विकास हो जाता है। वह कल्पना की दुनिया में खोया रहता है।

8) रुचियों का विकास बहुत तीव्र गति से होता है। बालकों और बालिकाओं में कुछ रुचियाँ समान और कुछ भिन्न होती हैं। समान रुचियाँ :- भावी जीवन और भावी व्यवसाय में रूचि, सिनेमा देखना, गाने सुनना, प्रेम साहित्य पढ़ना।

विभिन्न रुचियाँ- बालिकाओं में सुन्दर बनने, संगीत, नृत्य, नाटक करने। बालक को खेलने में, स्वास्थ्य में आदि।

किशोरावस्था में बच्चे का संवेगात्मक विकास

1) प्रेम, दया, क्रोध, सहानुभूति आदि संवेग स्थायी रूप धारण कर लेते हैं। वह इन पर नियंत्रण नहीं रख पाता है।

2) किशोर के ज्ञान, रुचियों और इच्छाओं की वृद्धि के साथ संवेगों को उत्पन्न करने वाली घटनाओं या परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाता है।

3) किशोर अपने आप को न तो बालक समझता है और न प्रौढ़। अतः उसे अपने संवेगात्मक जीवन में वातावरण से सामंजस्य में बहुत कठिनाई होती है। असफल होने पर घोर निराश हो जाता है।

4) किशोरावस्था में बालक एवं बालिका दोनों में काम-प्रवृति तीव्र हो जाती है और उनके संवेगात्मक व्यवहार पर असाधारण प्रभाव डालती है।

किशोरावस्था में बच्चे का सामाजिक विकास

1) बालकों और बालिकाओं में एक-दूसरे के प्रति बहुत आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। अतः एक-दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वे अपनी सर्वोत्तम वेश-भूषा, बनाव-श्रृंगार में अपने को दूसरे के समक्ष उपस्थित करते हैं।

2) बालक और बालिकाएँ दोनों अपने-अपने समूह का निर्माण करते हैं।

3) कुछ बालक और बालिकाएँ अपने या विभिन्न लिंग के व्यक्ति से घनिष्टता स्थापित कर लेते हैं|

4) किशोर समूह के प्रति वफादार रहता है जिस कारण नेतृत्व उत्साह, सहानुभूति सद्भावना आदि सामाजिक गुणों का विकास होता है।

5) किशोर बालक एवं बालिकाएँ सदैव किसी न किसी समस्या में उलझे रहते हैं जैसे-धन, प्रेम, विवाह, कक्षा में प्रगति, भावी व्यवसाय आदि।

किशोरावस्था में बालक का चारित्रिक विकास

1) एक आदर्श व्यक्ति की कल्पना करके, उसके समान बनने का प्रयास करता है।

2) किशोर अपने समूह,परिवार और पड़ोस के व्यक्तियों से सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई का अनुभव करता है।

3) वैयक्तिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का निर्माण करता है एवं दूसरे व्यक्तियों से बात करके अपने दृष्टिकोण की तुलना करता है।

4) किशोर, धर्म की संकीर्णता को त्यागकर सहिष्णुता और मानवधर्म का समर्थन करता है।

5) मुख्य चारित्रिक विशेषताएँ -चिंता, उच्च आदर्श, शक्तिशाली कल्पना, आत्माभिमान, स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम, धार्मिक रीति-रिवाजो में अविश्वास, चंचलता।

किशोरावस्था में शिक्षा का स्वरूप

हैडो रिपोर्ट के अनुसार, ग्यारह या बारह वर्ष की आयु में बच्चे की नसों में ज्वार उठना शुरू हो जाता है। इसको किशोरावस्था के नाम से पुकारा जाता है। यदि इस ज्वार का बाढ़ के समय ही उपयोग कर लिया जाय एवं इसकी शक्ति और धारा के साथ-साथ नई यात्रा आरंभ कर दी जाय तो सफलता प्राप्त की जा सकती है।

उपर्युक्त शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि किशोरावस्था आरंभ होने के समय से ही शिक्षा को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया जाना अनिवार्य है-

1) शारीरिक विकास के लिए शिक्षा

किशोरावस्था में शरीर में अनेक बदलाव होते हैं, जिनको उचित शिक्षा प्रदान करके शरीर को सबल और सुडौल बनाने का उत्तरदायित्व विद्यालय का है। अतः उसे शारीरिक और स्वास्थ्य शिक्षा, विभिन्न प्रकार के शारीरिक व्यायाम सभी प्रकार के खेलकूद आदि का आयोजन करना चाहिए।

2) मानसिक विकास के लिए शिक्षा

किशोर की मानसिक शक्तियों का विकास करने के लिए शिक्षा का स्वरूप उसकी रुचियों, रूझानों, दृष्टिकोणों और योग्यताओं के अनुरूप होना चाहिए। अतः ऐसे विषय पाठ्यक्रम में समाविष्ट करने चाहिए जिनसे मानसिक विकास हो।

3) संवेगात्मक विकास के लिए शिक्षा

किशोर कुछ उत्तम और कुछ ख़राब संवेगों से हमेशा संघर्ष करता है। इसलिए शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए जो ख़राब संवेगों का दमन और उत्तम संवेगों का विकास करे।

4) सामाजिक संबंधों की शिक्षा

किशोर जिस समूह का सदस्य होता है उससे वह आचार-व्यवहार की अनेक बातें सीखता है। विद्यालय में ऐसे समूहों का संगठन किया जाना चाहिए जिसकी सदस्यता ग्रहण करके किशोर उत्तम सामाजिक व्यवहार और संबंधो के पाठ सीख सके।

5) व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार शिक्षा

किशोर में व्यक्तिगत विभिन्नताएं और आवश्यकताएँ होती है। इसे समझकर विद्यालयों में विभिन्न पाठयक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिये।

6) पूर्व व्यावसायिक शिक्षा

किशोरावस्था में किशोर अपने भावी जीवन के लिए किसी व्यवसाय के बारे में नहीं जानता है। इसलिये विद्यालय में कुछ व्यवसायों की प्रारंभिक शिक्षा दी जानी चाहिए।

7) जीवन दर्शन की शिक्षा

किशोर अपने जीवन-दर्शन का निर्माण करना चाहता है पर उचित पथ-प्रदर्शन के अभाव मे वह ऐसा करने में असमर्थ रहता है इस का उत्तरदायित्व विद्यालय पर है।

8) धार्मिक नैतिक शिक्षा

किशोर के मस्तिष्क में विरोधी विचारों में निरंतर द्वंद्व होता है। फलस्वरूप वह उचित व्यवहार के संबंध में किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाता है। अतः उसे उदार धार्मिक और नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए।

9) यौन शिक्षा

किशोर बालिका -बालिकाओं में अधिकांश समस्याओं का संबंध काम प्रवृत्ति से होता है। अतः विद्यालयों में यौन शिक्षा की व्यवस्था होना अति आवश्यक है।

रॉस के अनुसार यौन शिक्षा की परम आवश्यकता को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता है। इस बात की आवश्यकता है कि किशोर को एक ऐसे वयस्क द्वारा गोपनीय शिक्षा दी जाय, जिस पर उसे पूर्ण विश्वास हो।

शिक्षक का कर्तव्य है कि वह किशोर बालक-बालिकाओं को यौन शिक्षा देकर उनमें स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास करे जिससे वे अपनी काम वासना की समस्याओं को सुलझा सके और आगे जाकर अच्छे माता-पिता बन सके।

10) बालकों-बालिकाओं के पाठयक्रम में विभिन्नता

बालको-बालिकाओं की रुचि और क्षमता के अनुसार उनके पाठ्यक्रम में विभिन्नता होनी चाहिए।

11) उपयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग

रॉस के अनुसार विषयों का शिक्षण व्यावहारिक ढंग से किया जाना चाहिए और उनका दैनिक जीवन की बातों से प्रत्यक्ष संबंध स्थापित किया जाना चाहिए।

12) किशोर के प्रति वयस्क जैसा व्यवहार

किशोर को न तो बच्चा समझना चाहिए न उसके प्रति बच्चे जैसा व्यवहार किया जाना चाहिए। इसके विपरीत उसके प्रति वयस्क-सा व्यवहार किया जाना चाहिए।

13) किशोर के महत्व को मान्यता

किशोर में उचित स्थिति और महत्व प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होती है उसकी इच्छा को पूर्ण करने के लिए उसको उत्तरदायित्व के कार्य दिये जाने चाहिए।

अपनी प्रगति की जाँच ४

१. किशोरावस्था को जीवन का सबसे कठिन काल क्यों कहा जाता है ? स्पष्ट कीजिए |

.....
.....
.....
.....
.....

4.2.5 बच्चे का विविध अवस्थाओं में विकास

बालक का शरीरिक विकास

	शैशवावस्था	बाल्यावस्था	किशोरावस्था
1) भार	1) जन्म के समय और पूरी शैशवावस्था में बालक का भार बालिका से अधिक होता है। 2) जन्म के समय बालक 7.15 पौण्ड, बालिका 7.13 पौण्ड 3) पहले 6 माह में भार दुगुना और एक वर्ष में तिगुना 4) दूसरे वर्ष में शिशु का भार 1/2 पौड प्रति मास के हिसाब से बढ़ता है।	1) बालक के भार में पर्याप्त वृद्धि 2) 12 वर्ष के अंत में भार 80 और 95 पौण्ड के बीच 3) 9 या 10 वर्ष में बालक का भार बालिकाओं से अधिक	1) किशोरावस्था में बालकों का भार बालिकाओं से अधिक बढता है। 2) बालक का भार बालिका से 25 पौण्ड अधिक
2) लम्बाई	1) संपूर्ण शैशवावस्था में बालक की लंबाई बालिकाओं से अधिक होती है। 2) जन्म के समय बालक की लंबाई 20.5 इंच, बालिका 20.3 इंच 3) पहले वर्ष मे शिशु की लंबाई लगभग 10 इंच और दूसरे वर्ष मे 4 या 5 इंच बढती है।	1) 6 से 12 वर्ष तक शरीर की लंबाई कम बढ़ती है। इन सब वर्षों में लंबाई लगभग 2 या 3 इंच बढ़ती है।	1) लंबाई बहुत तेजी से बढ़ती है। 2) बालक की लंबाई 18 वर्ष और उसके बाद भी बढ़ती है। 3) बालिका अपनी अधिकतम लंबाई पर 16 वर्ष की आयु में पहुँच जाती है।
3) सिर व मस्तिश्क	1) नवजात शिशु की सिर की लंबाई उसके शरिर की कुल लंबाई की 1/4 होती है। 2) पहले दो वर्षों में सिर तीव्र गती से बढता है। 3) जन्म के समय मस्तिष्क का भार 360 ग्राम 4) यह भार दो वर्षों में दुगुना होता है।	1) सिर के आकार मे क्रमशः परिवर्तन होता है| 2) 5 वर्ष की आयु में सिर प्रौढ़ आकार का 90% और दस वर्ष की आयु में 95%. होता है। 3) 9 वर्ष की आयु में बालक के मस्तिष्क का भार उसके कुल शरिर के भार का 90% होता है।	1) 15 या 16 वर्ष की आयु में सिर का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है एवं मस्तिष्क का भार 1,200 1,400 ग्राम के बीच में होता है।
4) हड्डीयां	1) हड्डियां छोटी और संख्या में 270 होती हैं। ये छोटी, कोमल लचीली और भली प्रकार से जुड़ी नहीं होती है। ये कैल्शियम फॉस्फेट और अन्य खनिज पदार्थो से दिन प्रति दिन कडी हो जाती है इसे अस्थिकरण कहते हैं।	1) इस अवस्था में हड्डियों की संख्या 206 हो जाती है। अस्थीकरण की प्रक्रिया शुरू रहती है।	1) इस अवस्था में अस्थीकरण की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। हड्डियों में पूरी मजबूती आ जाती है।
5) दाँत	छह माह में शिशु के अस्थायी या दूध के दाँत निकलने शुरू हो जाते है। एक वर्ष तक दाँतों की संख्या आठ हो जाती है। लगभग 4 वर्ष की आयु तक शिशु के पूरे दाँत निकलते है।	1) 6 वर्ष की आयु में बालक के दूध के दाँत गिरने लग जाते है। और स्थायी दाँत आ जाते है। स्थायी दाँतों की संख्या 32 होती है।	1) इस अवस्था में बालक और बालिकाओं के सभी दाँत निकलते है।

बालक का मानसिक विकास

	शैशवावस्था (जन्म से पाँच वर्ष तक)	**बाल्यावस्था (5 से 12 वर्ष तक)**	**किशोरावस्था (12 वर्ष से 17 या 19 वर्ष तक)**
	नवजात शिशु का मस्तिष्क कोरे कागज के समान होता है, जिस पर अनुभव लिखता है।	जब बालक लगभग 6 वर्ष का हो जाता है, तब उसकी मानसिक योग्यताओं का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है ।	मानसिक विकास 15 से 20 वर्ष की आयु में अपनी उच्चतम सीमा पर पहुँच जाता है।
बुद्धि	जन्म के समय बच्चा रोना, छिंकना, हिचकी लेना, दूध पीना, हाथ-पैर हिलाना जानता है फिर धीरे-धीरे उसका बौद्धिक विकास होता है।	बाल्यावस्था बौद्धिक विकास की अवस्था है। अवलोकन की शक्ति तर्क शक्ति, स्मरण शक्ति, ध्यान एवं विचार शक्ति का विकास होता है।	किशोरावस्था में बुद्धि का अधिकतम विकास हो जाता है।
मानसिक स्वतन्त्रता	पूर्ण रूप से अपने माता-पिता या संरक्षक पर आश्रित होता है। मानसिक स्वतन्त्रता की कोई पहचान नहीं होती है।	स्थिरता तथा नियंत्रण होता है। क्रोध आने पर भी प्रकट होने नहीं देते। मानसिक रूप से स्वतंत्र नहीं होता है।	रूढ़ियों,रीति-रिवाजों, अंधविश्वासों और पुरानी परम्पराओं को अस्वीकार करके स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने का प्रयास करता है।
मानसिक योग्यता	हल्की और भारी वस्तुओं एवं विभिन्न प्रकार के रंगों में अन्तर करना सीख जाता है, संयुक्त और जटिल वाक्य बोलने लगता है अर्थात् उनमें मानसिक योग्यताओं का विकास होना प्रारम्भ हो जाता है।	छोटी कहानियों और कविताओं को अच्छी तरह दोहराने का ज्ञान होता है। प्रतिदिन की साधारण समस्याओं का समाधान करने की योग्यता होती है।	मानसिक योग्यताओं का स्वरूप निश्चित हो जाता है। उसमें सोचने, समझने, विचार करने, अन्तर करने और समस्या का समाधान करने की योग्यताएँ उत्पन्न हो जाती है।
ध्यान	बड़े आकार की वस्तुओं को ध्यान से देखता है, ध्वनि सुनकर उस ध्वनि का अनुकरण करता है।	इस अवस्था में बालक हर चीज को ध्यानपूर्वक देखता है। ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है।	किशोर में ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता का पर्याप्त विकास हो जाता है। किसी विषय या वस्तु पर अपने ध्यान को बहुत देर तक केन्द्रित रख सकता है।
चिन्तन शक्ति		इस अवस्था में विचार शक्ति का अर्थात् चिन्तन शक्ति का विकास होता है।	किशोर में चिन्तन करने की शक्ति होती है। इसकी सहायता से वह विभिन्न प्रश्नों और समस्याओं का हल खोजता है।
तर्क, कल्पना शक्ति	विचित्र प्रश्न को लेकर तर्क करता है एवं उपजाऊ कल्पना के संसार में खोया रहता है जैसे-दिवास्वप्न, हवाई किले, परियों की कहानियाँ|	तर्क शक्ति एवं कल्पना शक्ति का विकास।	तर्क शक्ति एवं कल्पना शक्ति का पर्याप्त विकास हो जाता है। वह कल्पना की दुनिया में खोया होता है।
रुचियाँ	रूचियों का विकास प्रारम्भ हो जाता है। उदाहरण के तौर पर बच्चे खिलौनो से खेलने में रूचि लेता है।	रुचियों का विकास हो रहा होता है। वह छोटी कहानियाँ, कविताओं, खेल आदि में बहुत अधिक रुचि लेते है।	रुचियों का विकास बहुत तीव्र गति से होता है। बालकों और बालिकाओं में कुछ रुचियाँ समान और कुछ भिन्न होती है। समान रुचियाँ - भावी जीवन और भावी व्यवसाय में रूचि, सिनेमा देखना, गाने सुनना, प्रेम साहित्य पढना। विभिन्न रुचियाँ- बालिकाओ में सुन्दर बनने, संगीत, नृत्य, नाटक करने। बालक-खेलने, स्वास्थ्य आदि।

बालक का संवेगात्मक विकास

	शैशवावस्था	बाल्यावस्था	किशोरावस्था
	शिशु जन्म के समय से ही संवेगात्मक व्यवहार की अभिव्यक्ति करता है, शिशु का रोना, चिल्लाना और हाथ-पैर पटकना इसका प्रमाण है।	बालक के संवेग अधिक निश्चित और कम शक्तिशाली हो जाते हैं।	प्रेम, दया, क्रोध, सहानुभूति आदि संवेग स्थायी रूप से धारण कर लेता है। वह इन पर नियंत्रण नहीं रख पाता है।
	शिशु में संवेगात्मक व्यवहार अत्यधिक अस्थिर होता है। उसका संवेग कुछ ही समय के लिए रहता है। उदाहरणः- रोता हुआ शिशु खिलौना पाकर तुरन्त रोना छोड़कर हँस देता है।	बालक के संवेगों में शिश्टता आ जाती है। दमन करने की क्षमता आ जाती है।	किशोर के ज्ञान, रूचियों और इच्छाओं की वृद्धि के साथ संवेगो को उत्पन्न करने वाली घटनाओं या परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाता है।
	सम्वेगात्मक विकास में क्रमशः परिवर्तन होता चला जाता है।	विद्यालय के वातावरण का व्यापक प्रभाव पडता है। आदर्श,स्वतंत्र और स्वस्थ वातावरण उसके संवेगों का परिश्कार करता है, जबकि भय, आतंक और कठोरता के वातावरण में ऐसा होना असंभव है।	किशोर अपने आप को न तो बालक समझता है और न प्रौढ़। अतः उसे अपने संवेगात्मक जीवन में वातावरण से अनुकूलन करने में बहुत कठिनाई होती है। असफल होने पर घोर निराश हो जाता है।
	तीन वर्ष की आयु में शिशु अपने साथियों के प्रति प्रेम का विकास कर लेता है, 2 वर्ष के बाद उसमें भय का धीरे-धीरे विकास होता है।	अप्रिय व्यवहार, शारीरिक दण्ड और कठोर अनुशासन बालक में मानसिक ग्रन्थियों का निर्माण कर देता है जो उसके संवेगात्मक विकास को विकृत कर देता है।	किशोरावस्था में बालक एवं बालिका दोनों में काम-प्रवृत्ति बहुत तीव्र हो जाती है और उनके संवेगात्मक व्यवहार पर असाधारण प्रभाव डालती है।

बालक का सामाजिक विकास

बालक का सामाजिक विकास

	शैशवावस्था	बाल्यावस्था	किशोरावस्था
	जन्म से एक माह में शिशु मनुष्यों और आवाजों की पहचान नहीं कर पाता।	प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश करता है। वहाँ वह नए वातावरण से अनुकूलन करता है, नए मित्र बनाना सीखते है।	बालकों और बालिकाओं में एक-दूसरे के प्रति बहुत आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। अतः वे अपनी सर्वोत्तम वेशभूषा, बनाव-श्रृंगार में अपने को दूसरे के समक्ष उपस्थित करते है।
	दूसरे माह में वह आवाज पहचानते है एवं दूसरे व्यक्ति को देखकर मुस्कुराते है।	बालक के व्यवहार में उन्नति और परिवर्तन आरम्भ हो जाता है। फलस्वरूप स्वतन्त्रता, सहायता और उत्तरदायित्व के गुणों का विकास होता है।	बालक और बालिकाएँ दोनों अपने-अपने समूह का निर्माण करते हैं।
	तीसरे माह अपनी माँ को पहचानने लगता है और दूसरों के साथ खेलता एवं हँसता है।	बालक किसी टोली का सदस्य बनता है और सामाजिक कार्य में भाग लेता है।	कुछ बालक और बालिकाएँ अपने या विभिन्न लिंग के व्यक्ति से घनिष्ठता स्थापित कर लेता है

	छठे से आठवें माह में वह परिचित व्यक्तियों एवं अपरिचित व्यक्तियों में पहचान कर लेता है एवं व्यक्तियों के शब्द, हाव-भाव का अनुकरण करता है।	टोली बालक के आत्म-नियन्त्रण, साहस, न्याय सहनशीलता, नेता के प्रति भक्ति,दूसरों के प्रति सदभावना आदि गुणों का विकास करती है।	किशोर समूह के प्रति वफादार रहता है जिस कारण नेतृत्व, उत्साह, सहानुभूति सदभावना आदि सामाजिक गुणों का विकास होता है।
	तीसरे वर्ष में वह दूसरे बालकों के साथ खेलने लगता है और इस प्रकार उनसे सामाजिक संबन्ध स्थापित करता है।	बालक शिक्षक एवं बड़ों को सम्मान देता है। बालक का बांधनीय या अ बांधनीय व्यवहार में निरन्तर प्रगति करता रहता है।	किशोर बालक एवं बालिकाएँ सदैव किसी न किसी समस्या में उलझे रहते है जैसे-धन, प्रेम, विवाह, कक्षा में प्रगति, भावी व्यवसाय आदि।

बालक का चारित्रिक विकास

	शैशवावस्था	**बाल्यावस्था**	**किशोरावस्था**
	तीन माह तक शिशु को अपने उचित-अनुचित आचरण के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार का ज्ञान नहीं होता।	बालक दूसरे बालकों के सम्पर्क में आता है। फलस्वरूप उसके आचरण में परिवर्तन होना आरम्भ हो जाता है।	एक आदर्श व्यक्ति की कल्पना करके, उसके समान बनने का प्रयास करता है।
	2 वर्ष की आयु में अपने अच्छे या बुरे कार्यो के अनुसार अपने को अच्छा या खराब लड़का/लड़की समझने लगता है।	बालक विभिन्न परिस्थितियों में उचित और अनुचित में अन्तर करना जान जाता है।	किशोर अपने समूह,परिवार और पड़ोस के व्यक्तियों से सामंजस्य करने में कठिनाई का अनुभव करता है।
	2 वर्ष की आयु में वह बहुत स्वार्थी होता है और अपने खिलौने को भी किसी बच्चे से साझा नहीं करता है।	न्याय, ईमानदारी एवं प्रबल भावनाएँ व्यक्त करता है। बड़ों की आज्ञा का पालन करता है।	वैयक्तिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का निर्माण करता है एवं दूसरे व्यक्तियों से बात करके अपने दृश्टिकोण की तुलना करता है।
	3-4 वर्ष की आयु में बड़ों के आदेशों का पालन करते है, अच्छे, बुरे कार्यो में अन्तर समझने लगता है।	घर में स्वार्थपूर्ण और अनुचित पर विद्यालय में निःस्वार्थ और उचित व्यवहार करता है।	किशोर, धर्म की संकीर्णता को त्यागकर सहिष्णुता और मानवधर्म का समर्थन करता है।
	5 वर्ष की आयु में मूल्यों को बिना समझे ही स्वीकार करने लगता है।	बालक विवेक, न्याय, ईमानदारी और मूल्यों की भावना का विकास होने लगता है।	चरित्र की मुख्य विशेषताएँ-चिंता, उच्च आदर्श, शक्तिशाली कल्पना,आत्मभिमान, स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम, धार्मिक रीति-रिवाजों में अविश्वास, प्रतिद्वन्दिता की भावना, चन्चलता।

4.3 सारांश

शिक्षा मानव विकास की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया द्वारा शिक्षार्थी के सभी का विकास संभव है। इस प्रक्रिया की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि शिक्षा के स्तर को शिक्षार्थी की आयु ,वृद्धि रूचि तथा आवश्यकताओं के अनुरूप ही निर्धारित किया जाए। यह तभी संभव है जब शिक्षक को इन पक्षों के संबंध में पर्याप्त जानकारी हो। इसीलिए शिक्षक को विकास की अवस्थाओं के बारें में जानकारी होना बेहद महत्वपूर्ण है।

सामान्य रूप से विकास की अवस्था चार स्तरों में विभाजित की गयी है - शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था और प्रौढ़ावस्था। इन चारों ही अवस्थाओं में विकास की गति भिन्न भिन्न होती है और इन अवस्थाओं की कुछ विशेषताएँ भी होती है, इनकी जानकारी शिक्षक को होना आवश्यक है।

4.4 अपनी प्रगति की जाँच के लिए अपेक्षित उत्तर

अपनी प्रगति की जाँच 1 उत्तर -अध्याय 4.2.1 देखें |

अपनी प्रगति की जाँच 2 उत्तर - अध्याय 4.2.2 देखें |

अपनी प्रगति की जाँच 3 उत्तर - अध्याय 4.2.3 देखें |

अपनी प्रगति की जाँच 4 उत्तर - अध्याय 4.2.4 देखें |

अपनी प्रगति की जाँच 5 उत्तर - अध्याय 4.2.5 देखें |

4.5 शब्दावली

विकास की प्रक्रिया में बच्चे कुछ अवस्थाओं से गुजरते है। इस संबंध में मनोवैज्ञानिकों में मतभेद है। सामान्य रूप से इसका वर्गीकरण चार भागों में किया जाता है-

1) शैशवावस्था - जन्म से 5 या 6 वर्ष तक। जीवन का सबसे महत्वपूर्ण काल

2) बाल्यावस्था - 5 या 6 वर्ष से 12 वर्ष तक।

3) किशोरावस्था - 12 वर्ष से 18 वर्ष तक।

4) प्रौढावस्था - 18 वर्ष के बाद

4.6 कार्य आवंटन

१ बाल्यावस्था में शारीरिक विकास के बारे में चर्चा कीजिए |

4.7 क्रियाएँ

२. शैशवावस्था को जीवन का सबसे महत्वपूर्ण काल कहा जाता है| चर्चा कीजिए|

4.8 प्रकरण अध्ययन (केस स्टडी)

१. विकास की सभी अवस्थाओं के बारे में चर्चा कीजिए |

4.9 सन्दर्भ पुस्तकें

1)सिंह,अरुण कुमार,सिंह आशीष कुमार,व्यक्तित्व का मनोविज्ञान,मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन.दिल्ली,२०००.

2) पाठक,पी.डी.,शिक्षा मनोविज्ञान,आगरा :अग्रवाल पब्लीकेशन्स.

3) पाठक, आर.पी., उच्च शिक्षण मनोविज्ञान PEARSON पब्लीकेशन

4)गुप्ता एस.पी./गुप्ता अलका.,उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान,शारदा पुस्तक भवन,इलाहाबाद.

5) वालिया जे.एस,अधिगमकर्ता ,अधिगम एवं संज्ञान

6) अरुण कुमार सिंग,शिक्षा मनोविज्ञान

7) मंगल,एस.के.,शिक्षा मनोविज्ञान, दिल्ली,:पी.एच.आय.लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड,२०१५

8) Baron,Robert A.,Misra G.,Psychology,Pearson Publication,delhi 2014.

9) Bhatnagar S. and Saxena A.Advanced Educational Psychology .(2008)

10) Sharma R.A., Dubey Shri, Psychological Foundation of Education

संदर्भ

- एरिक्सन, एरिक एच. (१९५०)। चाइल्डहुड एंड सोसायटी। न्यूयॉर्क:नॉर्टन।
- डोएर, एच.ओ. (२००७)। सेलेक्टेड थीओरीस ऑफ डेव्लपमेंट। आशलैंड, ओएच: होग्रेफे एंड हू बरपब्लिशर्स।
- डॉ मालवीय, आर. (२००७)। क्रेयटिंग ए लर्निंग एंविरोंमेंट: चाइल्ड डेव्लपमेंट एंड पाइडागोगीकल इस्सुज। अकैडमिक एक्सलेन्स। दिल्ली।
- कोलबर्ग, एल. (१९६९)। स्टेज और सेकुएंस: द कोग्निटिव अप्रोच टु सोशियलाइजेशन। शिकागो: रेंड मैकनल्ली।
- टैन ओ.एस.,पार्सन्स, आर.डी., हिंसन एस.एल. और सरदो–ब्राउन, डी.(२००३)। एजुकेशनल साइकॉलजी ए प्रैक्टिसनर–रीसर्चर अप्रोच। ऑस्ट्रेलिया: थॉमसन।
- वूलफोक, अनीता (२००७)। एजुकेशनल साइकॉलजी (१०वां एडिशन) । बोस्टन: पियर्सन।
- सेंटरोक्क, जे.डब्लू. (२००८)। एजुकेशनल साइकॉलजी, थर्ड एडीशन। बोस्टन: मैकग्रा–हिल।
- http://www.ehow.com/how_7566430_applypsychosocialdevelopmentclassroom.
- Html
- http://www.icelseducatorsforlearning.ca/index.php?option=com_content&view=article&id=48&Itemid=62
- http://www..psy.pdx.edu/PsiCafe/Key Theorists/Kohlberg.htm
- http://kidedotals.com/book/export/html/251